विषय-सूची

१. कोलम्बस और उसका अद्भुत आविष्कार ... १

२. न्यूगिनी निवासी पापुआन २५

३. फाहियान ३५

४. आसाम के नागा ५२

५. कैलास यात्रा ६३

६. मातृभक्त नैपोलियन ८६

७. बरमा का दिग्दर्शन १०३

८. लन्दन और पैरिस के आवश्यक स्थानों पर मानसिक परिक्रमा ११६

९. भारत का मुकुट हिमालय १५०

१०. उत्तरी ध्रुव का विजेता पैरी १५८

कोलम्बस और उसका अद्भुत आविष्कार

साहसपूर्ण गवेषणा की ओजस्विनी कथा

३ अगस्त सन १४९२ साहसी वीरों के हृदय में अमर स्मृति का विशेष घटनाबोधक दिन है। इसी दिन स्पेन के एक छोटे से बन्दरगाह पैलास में एक असाधारण जन अपनी सामुद्रिक यात्रा के प्रबन्ध में संलग्न था। ५६ वर्ष की आयु में भी वह नवयुवकों के उत्साह तथा साहस को अपनी असमान शक्ति द्वारा लज्जित करता था; एवं अपनी गौरवान्वित आकांक्षा से वीरों के हृदय में नवजीवन का उल्लासपूर्ण संचार करता था। उस व्यक्ति का शरीर लम्बा था, मस्तक आयत तथा विशाल था, नेत्रों में विचारशीलता की अक्षुण्ण झलक थी, मुख पर अदम्य कान्ति की रेखा विद्यमान थी। उसी के लिए तीन जलपोत 'सान्ता मेरिया' 'पिन्ता' और 'नाइना' प्रस्तुत किये जा रहे थे। जो साधारण जन उस महान् व्यक्ति के साहस-परिपूर्ण जीवन से परिचित न थे, वे अपनी साधारण कल्पना द्वारा यही समझते थे कि यह नौकाएं सम्भवतः महाद्वीपों के किनारे-किनारे मछलियों को पकड़ने के लिए या समीपवर्ती देशों से व्यापारिक सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही तैयार करवाई

गई हैं। जो व्यक्ति उसकी अटल प्रतिज्ञा की दृढ़ता को जानते थे, वे भली-भांति समझ चुके थे कि यह महान् व्यक्ति अपने तथा अपने साथियों के जीवन की तनिक भी चिन्ता न करते हुए, इन नौकाओं को साधन बनाकर अपने अतुल पराक्रम से अपने लक्ष्य पर पहुंचने का प्रयत्न करेगा। जिस साहसी वीर के सम्बन्ध में हम कुछ कहना चाहते हैं उसका नाम था—क्रिस्टोफ़र कोलम्बस। वह इटली के जिनोआ नामक नगर में उत्पन्न हुआ था। उसके माता-पिता जुलाहे थे, परन्तु उसने अपने पैतृक व्यवसाय को पसंद नहीं किया और १४ वर्ष की अवस्था में ही कुतूहलवश उसके हृदय में एक सफल नाविक बनने की अभिलाषा जाग्रत हुई और तदर्थ किसी मल्लाह की शरण में जाकर उसके पास कुछ काल दास बनकर भी रहना स्वीकार किया। फलतः ३० वर्ष की अवस्था में उसने अपनी सर्वप्रथम जल-यात्रा, भूमध्यसागर के एजियन समुद्र में स्थित किआस नामक टापू तक की। इस द्वीप में ठहर कर यहां की विशेषताओं को सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करके उसने सुदूर पुर्तगाल, इंग्लैण्ड तथा आइसलैण्ड तक की यात्राएं बड़ी सुगमता तथा चाव से कीं। इन उल्लासपूर्ण यात्राओं ने उसके हृदय में विशेष साहस एवं कुतूहल का संचार कर दिया था। अनुमानतः ३३ वर्ष की अवस्था में वह पुर्तगाल पहुंचा और कुछ दिन वहां ठहरा। इसकी अद्भुत शक्ति तथा अलौकिक

पराक्रम को देखकर प्रसिद्ध नाविक राजकुमार हेनरी के एक कप्तान ने अपनी लड़की का विवाह इसके साथ करना चाहा। उसने भी इस सुयोग को सहर्ष स्वीकार कर लिया। परिणाम-स्वरूप उसका विवाह हो गया। उसके बाद वह वहीं पुर्तगाल में ठहरा रहा और अपने श्वसुर के सञ्चित तथा सुरक्षित यात्रा-सम्बन्धी साहित्य को विशेष रूप से अध्ययन करता रहा। इस विषय में विशेष तथा गम्भीर परिचय प्राप्त करने के लिए यह बड़ा उत्तम सुयोग था। इस अध्ययन से उसे विश्वास हो गया कि पृथ्वी गोल है। समस्त भूखण्ड, योरुप, एशिया, अफ्रीका तथा दूसरे और लघु द्वीपों से निर्मित है। इन सब द्वीपों में एशिया बहुविस्तृत, सुदीर्घ तथा आयत है। मार्को पोलो की भूगोल-संबंधी पुस्तक के भली-भांति अध्ययन से उसका ज्ञान इतना अगाध हो चुका था कि वह बड़े-बड़े अनुभवी नाविकों के साथ इस विषय पर बात करने में एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करता था। उसकी विचारधारा अन्य नाविकों की विचारधारा से कहीं बढ़-चढ़कर थी।

आज तक सभी यात्री पूर्व की ओर तो यात्रा कर चुके थे, परन्तु अटलांटिक महासागर में पश्चिम की ओर आगे बढ़ने का साहस अभी किसी को नहीं हुआ था। कोलम्बस ने विचार किया कि यदि पृथ्वी गोल है और एशिया बहुत दूर पूर्व की ओर विस्तृत है, तो अटलांटिक महासागर में पश्चिम

की ओर यात्रा करने से भी एशिया प्राप्त हो ही जाना चाहिए। प्रकट रूपमें देखा जाय तो पता लगता है कि उसने ऐसा अनुमान इसलिए किया था कि वह पृथ्वी को अपने वास्तविक आकार से बहुत लघु समझता था, और एशिया को बहुत ही विस्तृत तथा आयत। उसकी यह धारणाएं और भी प्रगाढ़ होती चली गई। उसने यह बात सुन ली थी कि मदीरा और एजोर द्वीपों के पास कुछ इस प्रकार के वृक्ष तथा दीर्घाकार बेतों के तने बहकर आये हैं जो किसी अपरिचित देश के प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त मनुष्यों द्वारा निर्मित कुछ काष्ठ-शकल भी अटलांटिक की प्रबल धारा में बहते हुए मिले, और एक द्वीप के तट पर दो मृतक शरीर आकर लगे, जो न योरुप के कहे जा सकते थे न अफ्रीका के। इन दोनों शवों की मुखाकृति तथा अन्य अङ्गविशेष की रचना योरुप के रहनेवालों के अंगों से सर्वथा भिन्न थी। इन विशेष घटनाओं ने उसके हृदय की धारणाओं को परिपक्व कर दिया और वह अटलांटिक महासागर में पश्चिम की ओर जलयात्रा करने के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत होने लगा।

विचार बहुत ही ऊंचा था, परन्तु साधनों की न्यूनता के कारण वह अपनी साहसपूर्ण यात्रा को किस प्रकार पूरा कर सकता था ?

वह चाहता था कि इस यात्रा को सफल बनाने के लिए

उसके पास अनेक जलपोत, सैकड़ों से अधिक अनुभवी मल्लाह, धन, खाद्य, पेय तथा रक्षणार्थ सामग्री पूर्णरूप से सज्जित होनी चाहिए। कोलम्बस के सामने यह समस्या थी कि यह सब सामग्री किस प्रकार एकत्रित की जाय? उसने सोचा कि अपना उद्देश्य यदि पुर्तगाल के भूपति जॉन द्वितीय के सामने रक्खा जाय तो सम्भव है, उसकी यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण हो सके। उसने ऐसा ही किया। पुर्तगाल के महाराज ने यह विचार अपनी विशेष परिषद् के सामने विचारार्थ प्रस्तुत किया। परिषद् ने गम्भीर विचार करने के पश्चात् यह निर्णय किया कि वे कोलम्बस के विचार से बिलकुल सहमत नहीं हैं। परन्तु कोलम्बस की धारणा ने पुर्तगाल-महाराज के हृदय को पर्याप्त प्रभावित किया। उसने चाहा कि यह बात कोलम्बस से सर्वथा गुप्त रक्खी जाय और गुप्त यात्रा की जाय। ऐसा विचार कर उसने गुप्त रूप से यात्रा का प्रबन्ध किया, परन्तु वह अपनी यात्रा में सफल न हो सके। अन्ततः इस योजना का पता कोलम्बस को लग गया। वह इस व्यवहार से अत्यन्त खिन्न हुआ और उसने पुर्तगाल छोड़ने का पूरा निश्चय कर लिया। सन १४८४ में उसने किसी को कहे बिना ही लिस्बन छोड़ दिया और स्पेन आगया। दो वर्ष तक यही सोचता रहा कि अपनी यात्रा को किस प्रकार सफल बनाया जाय? अन्त में निश्चय किया कि यात्रासम्बन्धी प्रार्थनापत्र रानी

आइसाबेला के पास भेजा जाय। इस विचार को उसने कुछ ही दिनों में प्रयोग रूप में परिणत कर दिया, परन्तु उस समय राजा फ़र्डीनैंड और रानी आइसाबेला दोनों ही मूर लोगों को दक्षिण स्पेन से निर्वासित करने में कटिवद्ध थे। उनसे युद्ध भी हो रहा था। ऐसी भीषण परिस्थिति में कोलम्बस के प्रार्थना-पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यहां भी निराशा से भेंट हुई। संरक्षण तथा सहायता की सामग्री की गवेषणा में छः वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु पग-पग पर निराशा की ही ठोकर लगती चली गई। उत्साह तथा धैर्य का पूर्णतया अवलम्बन करते हुए उसने इंगलैण्ड के महाराजाधिराज सप्तम हेनरी को भी यही सन्देश भेजा, परन्तु वहां भी अस्वीकृति ही पल्ले पड़ी। कई प्रगाढ़ मित्रों की सहायता तथा प्रोत्साहन से इसका उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा। जनवरी सन १४६२ में मूरों का प्रधान नगर ग्रेनाडा स्पेन के हाथों में आगया और मूरों को स्पेन का लोहा मानना पड़ा। अब रानी आइसाबेला को अवकाश मिल गया था और वह पूर्णतया निश्चिन्त थी, इसलिए उसका ध्यान कोलम्बस के प्रार्थनापत्र की ओर आकर्षित किया गया। कोलम्बस के भले उद्देश्य से आकर्षित हो रानी ने कोलम्बस को सहायता देने का पूरा निश्चय कर लिया। जब इस प्रकार रानी तथा कोलम्बस में पूर्णरूप से सहमति हो गई तो रानी ने कोलम्बस की सब आवश्यकताओं को पूर्ण करने का वचन दे

दिया। अब तो रानी कोलम्बस के साहस पर इतनी प्रसन्न थी कि उसने उसी समय उसे 'एडमिरल' की उपाधि प्रदान की और नवान्वेषित देशों के वायसराय का पद और उन देशों से उपलब्ध धन का दशम भाग भी देने का प्रण कर लिया। सबसे बड़ी कठिनता का सामना कोलम्बस ने अपने सहचारियों के ढूंढने में किया। इस कठिनता का साम्मुख्य कोई साधारण न था। बन्दीगृह में बन्धे हुए, व्यथित, दण्डित एवं खिन्न अपराधियों को भी जब ऐसा कहा गया तो वे भी उसके साथ चलने में आनाकानी करने लगे। एक ओर तो कारागार का कड़ा दण्ड था और दूसरी ओर कोलम्बस के साथ यात्रा। परन्तु बन्दियों ने बन्दीगृह में रहना, उसके साथ चलने की अपेक्षा अधिक कल्याणकारी समझा।

दुर्जेय कठिनाइयों के उपरान्त धन एवं भर्त्सनाएं देकर १२० साथी प्रस्तुत किये जा सके। 'सान्ता मेरिया' नामक जलपोत का मुख्य नाविक कोलम्बस बना। 'नाइना' का मार्टिन पिंजन का भाई यानेज पिंजन और 'पिन्ता' का स्वयं मार्टिन पिंजन प्रधान बना। पिंजन-बन्धु पैलास के विख्यात एवं अनुभवी नाविक थे। 'सान्ता मेरिया' नौका का भार १०० टन के लगभग था, तथा पिन्ता का ५० टन के लगभग और नाइना का भार केवल ४० टन ही अनुमानित किया गया था। एक वर्ष की खाद्य तथा प्रयोज्य सामग्री भर कर ३ अगस्त १४९२ को ये सब

नौकाएं अपरिचित राह की ओर चल पड़ीं। पवन के वेग में अनुकूलता होने के कारण तीनों जलयात्री कनारी द्वीपों तक पहुँच गये। पिन्ता का पतवार इस लघु-यात्रा में छिन्न-भिन्न हो गया था। वह कई स्थानों से चूने लग गई और उसके अन्दर जल भी भरने लग गया था। कोलम्बस ने इन द्वीपों में अनथक प्रयत्न किया कि वह पिन्ता का किसी और जलयान से विनिमय कर ले, परन्तु वह ऐसा करने में सफल न हो सका। लगभग २१ दिन वहाँ रुककर अन्त में कोलम्बस ने पिन्ता को अपने अधिकार में लिया। अब तक जलयान कनारी द्वीपों के समीप तक ही आया-जाया करते थे। यह किसी के भी ध्यान में न आया था कि पश्चिम की ओर क्या है? अब क्या था, कोलम्बस अटलाण्टिक की अज्ञात तरङ्गों को चीरते-फाड़ते आगे ही बढ़ता चला गया। उसकी आशाएँ ही उसके लक्ष्य-साधन का स्थान थीं, सचाई और कर्म-निष्ठता ही उसे उस ओर आकर्षित किये ले जा रही थी। उसे अपने लक्ष्य-साधन के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था। अक्षुण्ण साहस तथा विश्वास के साथ वह अज्ञेय धाराओं में बढ़ता हुआ चला जा रहा था। कुछ ही समय में कनारी द्वीप भी दृष्टि से तिरोहित हो गये। इतने ही में टेनरिफ द्वीप के अग्नि-पर्वत की आकाशस्पर्शी ज्वाला-शिखाएँ दृष्टिगोचर होने लगीं। उन्हें देखते ही कोलम्बस के साथी भयाक्रान्त तथा विह्वल से हो उठे। वे सोच न सके कि अब क्या किया जाय। सब के सब

किंकर्तव्यविमूढ़, चिन्ता में निमग्न और विभ्रान्त से थे। उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि उस स्थान में प्रविष्ट होते ही एक भयावह राक्षस उन्हें काल-कवल बनाने के लिए सामने दौड़ा हुआ चला आ रहा है। मल्लाह सहमकर तिलमिला उठे। कोलम्बस ने भयाक्रान्त साथियों को उनके जलयानों में जा-जाकर बहुत ढाढ़स बंधाया और उन्हें बतलाया कि जिसे आप राक्षस समझते हैं, वह केवल मिथ्या भ्रम है। यह तो ज्वालामुखी पर्वत है। कोलम्बस ने ज्वालामुखी पर्वत क्या होता है और वहां से आग क्यों निकलती है, सब कुछ भली-भांति मल्लाहों को समझाया-बुझाया। इस प्रकार उसने अपने साथियों के व्याकुल हृदय को शान्त करने का प्रयत्न किया। कुछ ही समय में ज्वाला-शिखाएं भी क्षितिज से मिश्रित हो गईं और शनैःशनैः उसी में अन्तर्लीन हो गईं। यह ज्वाला-शिखाएं ही उनके परिचित संसार का अन्तिम चिह्न थीं, अतः उनके अन्तर्धान होते ही नाविक फिर भयभीत तथा व्याकुल हो गये। उन्हें अपने अस्तित्व पर भरोसा ही न रहा, उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा जैसे मानों उन्होंने इस संसार को त्याग ही दिया है और अविदित लोक में भूत-प्रेतों की भांति विचरण कर रहे हैं। बारम्बार उनके हृदय में यह विचार उठ रहे थे कि फिर कभी वे अपने जन्म-स्थान को देखने का सौभाग्य भी प्राप्त कर सकेंगे या नहीं? कोलम्बस ने निराशा तथा निरुत्साह के थपेड़ों से झकोरे हुए, पद-पद पर डगमगाते हुए, अपने साथियों

को देखकर इस प्रकार सान्त्वना देने का प्रयत्न किया।

"देखो, हम ऐसे देशों की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, जहां चारों ओर स्वर्ण-राशि दृष्टिगोचर हो रही है। देखो तो सही, इन तटों पर चारों ओर मुक्ता ही मुक्ता बिखरे पड़े हैं। यहां पर्वत-राशि की कान्ति कितनी कमनीय तथा चुन्धिया देने वाली है। यह है रत्नों के ढेर की अद्भुत द्युति, जिस के सम्मुख हमारी दृष्टि क्षण भर भी नहीं ठहर सकती। यहां की पृथ्वी नाना प्रकार की जड़ी-बूटियों तथा बहुविध पादपों की नवीन छटा से परिपूर्ण है। ऐसे ही देशों के तटों पर कुछ समय के पश्चात् हमारे जलयान जा लगेंगे। उसी स्थान पर हम अपने देश की ध्वजा फहराएंगे।"

इस प्रकार वास्तविकता से परिपूर्ण सान्त्वनाओं को सुनकर मल्लाहों के हृदयों में आशा की प्रदीप्त दिव्य रश्मि चमक उठी। उनकी रग-रग में आनन्द तथा नवीन बल संचरित होने लगा। अब तो साहस-बल से परिपूर्ण साथी अनथक होकर नौका को बड़े प्रमोद तथा अलौकिक आनन्द-तरङ्ग के साथ खेने लगे। यद्यपि ये नौकाएं योरुप से पर्याप्त दूर पहुंच चुकी थीं, फिर भी प्रश्न करने पर कोलम्बस यही कहा करता था कि हम योरुप से कुछ ही दूरी पर हैं। वहां से दूर होना कोलम्बस को जरा भी नहीं खलता था। आगे बढ़ने में उत्तरपूर्वीय समुद्री हवाएं पूरी-पूरी सहायता दे रही थीं। इस प्रकार बढ़ते हुए एक दिन अचानक

कोलम्बस को दृष्टिगोचर हुआ कि उसकी मार्गप्रदर्शिनी चुम्बक की सुई इधर-उधर फिरने लगी है। इस बात को देखकर कोलम्बस स्वयं घबरा उठा। उसने सोचा कि अब मैं ऐसे संसार में आ गया हूं जहां चुम्बकीय सिद्धान्त का लागू होना भी दुष्कर है। इस व्याकुलता की धारा में बहते हुए भी अपने साथी नाविकों को सान्त्वना ही नहीं दी प्रत्युत तुरन्त ही यह कपोलकल्पित बात कहते हुए ढाढ़स बंधाने का प्रयत्न किया—"नवीन विश्व के इस नये प्राङ्गण में नये नक्षत्रों के प्रभाव से ही सुई में यह विलक्षण-सा विकार उत्पन्न हो गया है। घबराने की आवश्यकता नहीं।"

दूसरे दिन १८ सितम्बर को जहाज़ों के ठीक ऊपर एक बकुल जाति का पक्षी तथा विविध प्रकार के अन्य पक्षी उड़ते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखते ही सब यात्रियों की वदनाकृतियां प्रसन्नता से विकसित हो उठीं। उन्हें विश्वास हो गया कि अवश्य आगे कोई स्थल होगा, अन्यथा यह पक्षि-समुदाय कहां से उद्भूत हो सकता था! पहिले पक्षियों को देखकर जहां उन्हें ढाढ़स बंध गया था, वहां अन्य खगावलि को देखकर उनके मुखों पर विश्वास-आभा दृष्टिगोचर होने लगी। इस विश्वास-आभा ने सबके हृदय को इतना दृढ़ तथा साहस-परिपूर्ण बना दिया कि अब सब को निश्चय हो गया कि सम्मुख तैरते हुए वृक्ष भी इस बात के ही बोधक हैं कि आगे कुछ दूर पर अवश्य स्थल है।

वह आकाश की भव्य छटा जिसमें नक्षत्रगण आंखमिचौनी खेल रहे थे, वह चन्द्रमा की जल में पड़ी प्रतिच्छाया जो कांपते-कांपते मन को गुदगुदा रही थी, चारों ओर से बहनेवाली मलयज गन्ध की अनुपम सुगन्धि, क्रीड़ालीन जलजन्तुओं की जीवनानन्द-मयता, सबके चित्त को लुभाकर मुग्ध कर रही थी। कोलम्बस बोल उठा, अहा ! अब ऐसे मुग्धकारी वायुमण्डल में यदि नाइटिंगेल होती तो क्या अच्छा होता ?

यह आनन्द क्षणिक तथा आकाश-पुष्प के समान ही प्रतीत हुआ। नौकाओं को खेते हुए कई दिन व्यतीत हो गये, परन्तु पृथ्वी का कहीं ओर-छोर न मिला। उत्तरपूर्वीय समुद्री हवाएं तीव्र वेग से बहती चली जा रही थीं और वे नौकाएं भी उस वेग से बाध्य होकर न जाने कहां बहती चली जा रही थीं। अब उन्हें चिन्ता इस बात की हुई कि यदि इन पवनों द्वारा उद्दिष्ट स्थान न मिल सका तो इन्हीं विरुद्ध पवनों द्वारा अपने देश में पहुंचना भी कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव हो जायगा। बहुत से मल्लाह कोलम्बस को, ढीठ, मूर्ख तथा भ्रान्त आदि कहकर बड़बड़ाने लगे। कई तो क्रोध में आगबबूला होकर कहते थे कि एक व्यक्ति की व्यामोहता के कारण १२० मनुष्य बुभुक्षित तथा कुपित हैं, इतना ही नहीं प्रत्युत उनको जान के लाले भी पड़े हुए हैं। यह कितना घोर अन्याय है। इस प्रकार के [illegible] म्बस के प्रति विद्वेष की प्रचण्ड अग्नि

दहकने लगी। इतने ही में वे क्या देखते हैं कि उसी दिन संध्या-समय पक्षि-वृन्द आकाश को चीरता हुआ पार गया। इसमें एक गौरैया पक्षी भी था, जो मनुष्यों के घरों में ही अपना नीड़ बनाना पसन्द करता है। अब सबको फिर विश्वास हुआ कि स्थल कुछ ही दूर होगा। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये उनका निश्चय एवं विश्वास और भी दृढ़ होता चला गया। आगे क्या देखते हैं कि समुद्र की नीलिमा एक हरियावल में परिवर्तित होती जा रही है। समुद्रतल तटोद्भव तृण-राशि के विशेष घनरूप से आच्छादित होता जा रहा है। परन्तु ज्यों ही वे आगे बढ़े तो क्या देखते हैं कि वह तृण-राशि इतनी घनी हो गई कि बजरों का उसमें से जाना भी अत्यन्त दुष्कर हो गया। अब तो सब के सब बुरे फंसे, और सोचने लगे कि क्या अब यहीं उलझ कर अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा। कोलम्बस के साथी मल्लाह फिर घबराने तथा बड़बड़ाने लगे। कोलम्बस स्वयं व्याकुल था। फिर भी अपने साथियों को ढाढ़स ही बन्धाता रहा। वास्तव में यह घास समुद्र ही की थी।

सारगोसा सागर को पार करने पर जब उसका घास से पिण्ड छूटा तो मल्लाहों की सहायक उत्तरपूर्वी समुद्री हवा एकाएक बन्द हो गई। विषुव रेखा के अधिकाधिक निकट होने के कारण पवनों का शान्तिकाल सुसज्जित रूप में आ पहुंचा था, परन्तु स्थल का कोई भी चिन्ह दृष्टिगोचर न होता

था। मल्लाहों में फिर घबराहट तथा बड़बड़ाहट आरम्भ हुई और सब के सब चिन्ताग्रस्त होकर सोचने लगे कि अब कैसे और किधर चला जाय ! यह विचार ही रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक विशालकाय ह्वेल नाम का आयत मत्स्य समुद्र में उतरा रहा है। इस मत्स्य की अदृष्टपूर्व भयानक आकृति को देखकर नाविक फिर त्रस्त हो गये। उनका साहस डगमगा गया और धैर्य क्षीण हो गया। प्रत्येक के नेत्र क्रोध से अरुण ; तथा भयोत्पादक हो गये थे। कोलम्बस के प्रति सबको अश्रद्धा ही नहीं प्रत्युत घृणा हो गई थी।

'हम लोग इसकी आज्ञा में नहीं रह सकते', एक ने कहा।

दूसरे बोले, 'हमारे जीवन को नष्ट करने वाला कौन है ?

बस यही (कोलम्बस)'

कुछ बोले। 'यदि हमें पता होता तो इसका साथ ही न देते।'

'मारो और इसे समुद्र में ढकेल दो', कई चिल्ला उठे।

यह सब अपमानजनक शब्द कोलम्बस को सुनाने के लिए ही कहे जा रहे थे और वह इन निरादरसूचक शब्दों को सुन भी रहा था, परन्तु करता भी क्या ? वह खिन्न अवश्य था, परन्तु उसकी आशावल्लरी ज्यों की त्यों लहरा रही थी। उसने प्रेम तथा आदरसूचक वचनों में अपने साथियों को सम्बोधित करके कहा कि स्थल अवश्य समीप है, विश्वास रक्खो।

सूर्यास्त होने से पूर्व ही पिन्ता का कमाण्डर पिंजन चिल्ला

उठा—'पृथ्वी, पृथ्वी'। मल्लाहों के मुख पर हर्ष की रेखा दौड़ गई। सब मल्लाह नत-मस्तक होकर ईश्वर का धन्यवाद करने लगे। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही कोहरे के साथ-साथ पिजन का दृष्टि-भ्रम भी नष्ट हो गया। इधर-उधर देखने पर कहीं स्थल का पता नहीं चलता था। अबकी बार दुःख तथा असंतोष की सीमा और भी बढ़ गई। जब चारों ओर दृष्टि दौड़ाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि न कहीं द्वीप है और न कहीं पृथ्वी, न सोना है और न मोती। उनकी जगह सामने मौत ही दिखाई दे रही थी। अब सबने निश्चय कर लिया कि हम सब केवल भ्रम में पड़े हुए हैं, अपने निर्दिष्ट उद्देश्य पर पहुंचना अत्यन्त कठिन है। हमारी प्राणाहुति अवश्य दी जायगी। इस प्रकार के विचार-भ्रमावर्त में वे चक्कर लगाने लगे। कपटी, नीच, देशारि कोलम्बस! तूने यह क्या किया? तुम किस जन्म की शत्रुता निकालना चाहते हो? हमने तुम्हारा क्या अपराध किया था जिसका तुम यह घोर दण्ड देना चाहते हो? इस प्रकार केवल बड़बड़ाते ही न थे, प्रत्युत कोलम्बस का सिर काटने पर उतारू हो रहे थे। नीतिनिपुण तथा कालाभिज्ञ होने के कारण कोलम्बस ने किसी को शान्ति से, किसी को दमन से तथा कइयों को भर्त्सना से शान्त किया। अपने साथियों से प्रार्थना की कि कृपा करके मुझे तीन दिन का अवसर और दो। यदि इतने समय में हम किसी तट तक न पहुंच सके तो तुम जो

इच्छा हो सो करना।

१० अक्टूबर १४६२ को सूर्योदय के समय कुछ सद्यःउन्मूलित वृक्ष, कुछ परशु तथा अन्य शस्त्रों द्वारा कटे हुए काष्ठ-शकल, विकसित कुसुमपुञ्ज से सुशोभित शाखाएं तथा एक नीड़ जिसमें चटका अपने छोटे बच्चों को से रही थी, क्रमशः सागर-तरङ्गों के साथ बहते हुए दृष्टिगोचर हुए।

दूसरे दिन ११ अक्टूबर १४६२ को रात्रि के घोर तिमिर में निद्राजित कोलम्बस की गवेषणापूर्ण दृष्टि अकस्मात् क्षितिज पर वह्निज्वाला के एक क्षणिक प्रकाश पर पड़ी। उसने शनैः शनैः अपने विश्वसनीय साथियों को संकेत करते हुए कहा—कुछ देखा भी आप सब ने ? इतने में एक विलक्षण प्रकाश आविर्भूत हुआ और तत्क्षण लीन हो गया। प्रकाश था अवश्य, आंखों को मृगतृष्णा में न डाल सकता था, फिर भी दूध का जला छाछ को फूंक मार-मार कर पीता है इस लोकोक्ति के आधार पर उन्हें पूर्ण विश्वास न होता था। समझते थे 'कहीं यह भी कपट का मार्जन न हो'। इतने में आगे-आगे चलनेवाली पिन्टा ने एक बन्दूक चलाई। 'धरती, धरती', यह ध्वनि आकाश-पाताल में छा गई। सब के सब हर्ष से फूले न समाते थे। कोलम्बस ने भी इस चेतनामयी अग्निज्वाला में नवोदय जीवन [illegible] कर लंगर का निश्चय हुआ शुद्ध हिरण्य निकाला। यहाँ [illegible] के आङ्गन में आशाओं के हिंडोले पर बैठकर

झूल रहा था, अब स्थिर होकर मनुष्य के वक्षःस्थल पर चिमट गया। सुवासित स्थानों की मधुर परिमल मनुष्यों के मस्तिष्कों को सुगन्धित एवं प्रफुल्लित करने लगी। १२ अक्टूबर को पौ फटते ही सागर-तरङ्गों से घिरे हुए एक द्वीप का विशाल आकार दृष्टि के सम्मुख झलकता हुआ-सा प्रतीत हुआ। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े, किनारे का रेता भी स्पष्टतया प्रतीत होने लगा। थोड़ी देर में इधर-उधर दृष्टिपात करने पर हरी-हरी भूमि भी प्रत्यक्ष होने लगी। पहाड़ियों के मध्य भाग में लगे हुए सुन्दर आयत तनों से सुसज्जित वृक्ष भी दृष्टिगोचर होने लगे। बीच-बीच में लकड़ी तथा पर्णनिर्मित कुटियाएं, और उनसे धुआं, फिर बहुत ही समीप जाने पर क्षपणक के समान अर्धनग्न तथा नग्न स्त्री, पुरुष तथा बच्चे दिखाई पड़ने लगे।

भयावह संकटों के सामने कोलम्बस का हृदय कभी खिन्न तथा साहस-हीन न हुआ था, परन्तु इस विचित्र दृश्य ने उसके हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला और बरबस उसकी आंखों से आंसुओं की अविच्छिन्न धारा बहने लगी। वह अब तिल-मिला उठा और उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह अब उस "कुमारी" धरती पर चरण-निक्षेप करते हुए उस पर ईसाई धर्म और स्पेन का झंडा गाड़ देगा। उसने सम्राट् के दिये हुए एड-मिरल और वायसराय के पद के अनुरूप अपनी राजकीय वेष-भूषा धारण कर ली। निर्भय होकर गौरवान्वित विचारों के

से पुकारने लगा। इस द्वीप के किनारे पर पहुंचते ही कोलम्बस का 'सान्तामेरिया' नामक जलयान दलदल में धंस गया। अतः उसकी रक्षा के लिए उसने अपने कुछ साथियों को उस स्थान पर छोड़ दिया। सान्तामेरिया में जितनी भी फ़ालतू लकड़ी प्राप्त हो सकी, उसके साथ उसने अपने साथियों के लिए एक व्यूह बनवा दिया।

४ जनवरी १४९३ को वह अपने साथियों के साथ स्पेन को लौट पड़ा। वहां छोड़े हुए साथियों को उसने आश्वासन दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र लौट कर आयेगा, तब तक धैर्य के साथ सब के सब वहीं डटे रहें और उस द्वीप के विषय में जितना अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें, उतना करने का भरसक प्रयत्न करते रहें। बड़ी कठिनताओं का सामना करते हुए वह १३ मार्च को पैलास पहुंचा। अपनी विजय के द्योतक चिह्न दिखलाने के लिए वह अपने साथ अन्वेषित प्रदेशों से विचित्र तथा भान्ति-भान्ति की शुकसारिकाएं, तथा अन्य मुग्धकारी वस्तुएं एवं कुछ मूल-निवासी व्यक्तियों को भी लाया था। उसकी इस गवेषणापूर्ण यात्रा को जानकर प्रजा तथा राजा ने उसका बड़े समारोह से स्वागत किया।

इसके अनन्तर कोलम्बस ने तीन यात्राएं और कीं। इन यात्राओं में उसने डोमिनिका, ग्वाडेलुप, एंटिगुआ, सान्ताक्रूज, कुमारी (वर्जिन) द्वीपावली, पोर्टोरिको, जमैका, ट्रिनिडाड आदि

अनेकानेक द्वीपों तथा दक्षिण अमेरिका की प्रधान भूमि की गवेषणा की।

परन्तु अब तक कोलम्बस इनको एशिया के पूर्वीय द्वीप ही समझता रहा। अनेक वर्षों के अनन्तर कुछ अन्य यात्रियों ने, जिनमें एक अमेरिगो विस्पुकी भी बताया जाता है, अपनी सूक्ष्म गवेषणाओं द्वारा यह सिद्ध किया कि जिसे कोलम्बस आजतक एशिया समझता रहा था, वह एशिया नहीं, किन्तु अब तक के अविदित दो गौरव-परिपूर्ण महाद्वीप उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका हैं। सम्भव है इन द्वीपों का नाम 'अमेरिका' कदाचित् 'अमेरिगो' के नाम पर ही रक्खा गया हो। निःसन्देह यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि कोलम्बस ने वास्तव में एक नये जगत् का अन्वेषण किया था, और पृथ्वी का अर्धगोल, जिसमें अमेरिका स्थित हैं, अब भी नवीन लोक के नाम से पुकारा जाता है।

अपनी दूसरी यात्रा में कोलम्बस अपने साथ बहुत से जहाज़ और लगभग १५०० मनुष्य ले गया था, इस भरोसे पर कि वह उपनिवेशों की स्थापना करेगा। इधर-उधर पर्यटन करते हुए जब उसने वहां आकर देखा, जहां वह अपने साथियों को द्वीप की सूक्ष्म गवेषणा के लिए छोड़ गया था तो उनमें से किसी एक का भी उसे पता नहीं लगा और नाहीं हिस्पेनिओला में रचा हुआ वह लकड़ी का व्यूह रहा था। वह सन्देह में पड़कर कल्पना करने

लगा कि कदाचित् वे आपस में लड़कर मर चुके हों, या मूल-निवासियों से लड़-झगड़ कर धराशायी हो गये हों। फिर भी उसने अपने अन्य साथियों को वहां बसाने की योजना, उनके सम्मुख प्रस्तुत की। परन्तु वहां का जलवायु उसके साथियों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ, इसलिए उनमें घोर असन्तोष फैल गया। वे कोलम्बस के व्यवहार से भी सन्तुष्ट न थे, इस लिए स्पेन की राजसभा में उसके विरुद्ध शिकायतों पर शिकायतें पहुंचने लगीं और इसे वहां से लौटना पड़ा। तीसरी यात्रा में कोलम्बस के विरुद्ध फिर लगातार शिकायतें पहुंचीं, फलतः उसे बन्दी कर लिया गया और हथकड़ियां पहना कर स्पेन में वापिस लाया गया। मार्ग में जलयान के कप्तान ने उसको हथ-कड़ियों को खोलने के लिए बहुत कहा परन्तु उस साहसी वीर ने उसके वचनों को स्वीकार नहीं किया। उसने कहा कि मैं उन्हें तब तक पहने रहूंगा जब तक राजा और रानी, जिनके आदेश से दण्ड्य बन्दी बना हूं, स्वयं अपनी आज्ञा देकर न खुलवाएंगे। यह हथकड़ियां मुझे राज्य के प्रति अपनी सेवाओं के फलस्व-रूप मिली हैं। अतः इस पुरस्कार के स्मारक स्वरूप, मैं इन्हें अपने पास ही रखना चाहता हूं। सच पूछो तो मैं इन्हें अपने प्राणों से अभिन्न समझता हूं। यदि मेरी प्रार्थना स्वीकृत की जाय, तो मैं यह कहूंगा कि मेरी मृत्यु के उपरान्त यह मेरे शव के साथ ही दबा दी जायं, तभी मुझे सच्ची प्रसन्नता होगी। रानी

आइसाबेला ने, जो कोलम्बस को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती थी, जब यह सारी कथा सुनी, तो बरबस उसकी आंखों से अश्रुस्रोत बहने लगा, जिसे वह यत्न करने पर भी थाम न सकी।

उसने बहुत दुःख प्रकट किया और धन एवं सम्मान द्वारा कोलम्बस के अपमान की पूर्ति करने का यत्न किया। अब वह इससे अधिक कर भी क्या सकती था? जब कोलम्बस अपनी चौथी यात्रा से लौटा तो उसकी संरक्षिका रानी आइसाबेला इस संसार को त्याग कर प्रभु की गोद में जा चुकी थी। कोलम्बस ने जीवन के अन्तिम वर्ष रुग्णावस्था तथा निर्धनता में ही व्यतीत किये। अन्तिम अवस्था को संकट में व्यतीत करते हुए कोलम्बस का देहावसान २० मई १५०६ को हुआ। कुछ भी हो यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि उसकी यह अमर कथा संसार से कभी मिट नहीं सकती। इतिहास के पृष्ठ इस कथा को स्वर्णाक्षरों में स्थान देंगे। जब तक पृथ्वी पर मनुष्य हैं, कोलम्बस की कथा स्थायी रहेगी। लगभग चारसौ वर्ष पूर्व की बात को भूला नहीं जा सकता जबकि अनेक देश अज्ञान के अन्धकार में डूबा रहने के कारण वन्य जीवन बिता रहे थे, अड़ोस-पड़ोस का भी जिन्हें कुछ ज्ञान न था। या यों भी कह सकते हैं कि अपनी आभ्यन्तरिक वेदनाओं तथा विलास-सामग्री में तल्लीन होने के कारण अपनी सत्ता ही खो बैठे थे। योरुप के दूरदर्शी निवासियों

ने, सागर-यात्रा, गवेषणा, उपनिवेशन, धर्मप्रचार और व्यापार आदि की महत्ता को भली भान्ति समझ अपनी विशाल आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए आवश्यक सामग्री भो ढूंढ निकाली। तेरहवीं शताब्दी के उत्तरीय भाग में मार्को पोलो की एशिया संबंधी तथा १५ वीं शताब्दी में राजकुमार हेनरी की अफ्रीका संबंधी गवेषणाओं ने योरुपनिवासियों का ध्यान शेष जगत् की ओर जाग्रत कर दिया था। योरुप वालों के विश्व से यह वास्तविक विश्व कहीं परे था। वे योरुप, अफ्रीका और एशिया इन तीन खण्डों में सम्पूर्ण विश्व को विभक्त मानते थे, परन्तु इस अन्धकार में ज्योति की ज्योत्स्ना इतिहास के पृष्ठों में सदा के लिए जगमगाती रहेगी।

न्यूगिनी-निवासी पापुआन

नर-विकास की सृष्टि में निकृष्ट श्रेणी में गिने जाने वाले, पिगमियों (वामनों) पर पूर्ण आधिपत्य जमाने वाले न्यूगिनी के पापुआन गिने जाते हैं। जिस समय न्यूगिनी एशिया महादेश के साथ स्थल द्वारा जुड़ा था, उसी काल न्यूगिनी में पापुआनों का सबसे पूर्व आगमन हुआ। ये अभी तक सागर-यात्रा से अनभिज्ञ हैं। पिगमियों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध होने के कारण इनका रुधिर-मिश्रण भी हुआ है, ऐसा बतलाया जाता है।

पापुआनों की अनेक जातियां हैं! वे भी हमारे देश की भान्ति स्थान-भेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएं बोलती हैं। उनकी भाषा इतनी टेढ़ी-मेढ़ी तथा व्याकरणशून्य है कि आज सभ्य व्याकरण-श्रमी भी उसे समझ नहीं सकता। उन में एक और विचित्र बात पाई जाती है कि यदि वे किसी अपरिचित व्यक्ति को देख लेते हैं, तो उसे बिना मारे नहीं छोड़ते। इसीलिए इनके प्रान्त में कोई अन्वेषक कठिनता से प्रवेश करने का साहस करता है।

स्थूल दृष्टि से यदि विभाजन किया जाय, तो हम इन्हें दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, एक तो वे, जो घने जंगलों में रहते हैं और दूसरे वे, जो समुद्र-तट के समीप रहते हैं।

जाते हैं। अपने जानवरों से इन्हें इतना घनिष्ठ प्रेम होता है कि ये उनकी मृत्यु पर इष्ट की मृत्यु की भान्ति शोक मनाते हैं। किसी पालतू शूकर की मृत्यु पर इनकी स्त्रियां कीचड़ लपेट कर इतना शोक मनाती हैं मानों इनके किसी घनिष्ठ सम्बन्धी की मृत्यु हुई हो। लड़ना-झगड़ना, या मनुष्य का सिर उतार देना इनके लिए नैत्यिक क्रियाओं के समान साधारण-सी बात है। लड़ते समय ये अपने बच्चों को भी पीठ पर बांध कर ले जाते हैं, जिससे वे भी बचपन से ही युद्ध-कला में उनके समान कुशल हो सकें।

उपरिलिखित वर्णन घने जंगलों में रहनेवाले पापुआनों का है। सागर-तट के प्रदेशों में रहनेवाले पापुआनों का आकार छोटा, पर चमड़ी का वर्ण कुछ हलका होता है। इनमें विशेष बात यह है कि इनका पेट बड़ा स्थूल और आगे को उभरा हुआ होता है। वन्य पापुआनों की भान्ति इनके भी लड़ाई आदि के ढंग कुछ निराले ही होते हैं, पर ये युद्ध में भाले का प्रयोग विशेष रूप से करते हैं। इन्होंने भाले की प्रयोग-विधि समुद्रतट पर रहनेवाले मेलानेशियनों से सीखी है। इनके घर भी भिन्न प्रकार के होते हैं, क्योंकि इन्हें लकड़ी कुछ दूर से उठाकर लानी पड़ती है। ये अपने बाल भी विचित्र ढंग से रखते हैं। ये उनमें धूल, कोयला और मधु मलते हैं, फिर उन्हें पगड़ी की भान्ति लपेट लेते हैं, जिस की एक लड़

कन्धे पर हिला डुला करती है। ये जंगल की मधु-मक्षिकाओं का मधु प्रयोग में लाते हैं, अतः इनके सिर से दुर्गन्ध आती रहती है।

समुद्री प्रदेश के समीप होने पर भी इनका प्रान्त जंगलियों की अपेक्षा सभ्य संसार से कोसों दूर है। इनके ग्राम बहुत छोटे होते हैं। एक ग्राम में दो से लेकर आठ तक घर होते हैं। इसलिए सम्बन्ध तथा परिणय आदि करने पर कई प्रकार की असुविधाएं तथा अड़चनें पैदा होती हैं। इनके पास किसी प्रकार के यान का प्रबन्ध नहीं होता। इनके यहां यह भी प्रथा है कि निकट सम्बन्धियों से दुहिता का विवाह न किया जाय। क्योंकि वह 'दूरेहिता' ही होती है। जिन गांवों में दो-चार घर होते हैं वहां यह नियम पूर्णतया प्रयोग में नहीं लाया जाता। ऐसी अवस्था में यह नियम-विरुद्ध भी कर बैठते हैं।

इनके यहां भी घने जंगलों में रहने वाले पापुआनों के समान अपने शवों को अपने उपवनों में गाड़ देने की प्रथा प्रचलित है। मृतक-गर्त के निरीक्षण के लिए ये चारों ओर चटाई बिछा देते हैं। इनकी विधवाओं में अपने मृत पति की खोपड़ी ही नहीं प्रत्युत उसके बाल और आभूषणों को भी उठाकर चलने की प्रथा है।

नृत्य-क्रीड़ा के समय ये लड़ाई का दृश्य भी दिखलाते हैं। वर्छे के साथ एक दूसरे को भर्त्सित करने का अच्छा दृश्य

उपस्थित करते हैं। इनके वाद्यों में भी यही भर्त्सना के भाव प्रकाशित किये जाते हैं। लड़ाई इनके जीवन का एक प्रधान व्यवसाय है, इसलिए इसका ठीक चित्रण कोई कठिन प्रतीत नहीं होता। इतना होने पर भी वे मनुष्य के सब प्रकार के भावों तथा अभिनयों को ठीक २ चित्रित नहीं कर सकते।

पापुआन कभी-कभी उत्सव भी मनाया करते हैं। ग्राम के मनुष्य एकत्रित हो जाते हैं। स्त्रियां खाद्य तथा पेय सामग्री अपने बालकों के साथ पीठ पर लटका कर लाती हैं। ऐसे समय में अपने आप को सुभूषित करने के लिए विशेष प्रकार के पक्षियों के पंखों का उपयोग किया जाता है। विशेष बात यह है कि स्त्रियां अपने शरीर में गोदना गुदवा कर अपने आप को अलंकृत और कृतकृत्य समझती हैं।

उत्सव के अवसर पर इन का नृत्य एक विशेष स्थान रखता है। इस नृत्य में अपने घरेलू पक्षियों का अनुकरण करते हैं। जिन पक्षियों को ये प्रतिदिन देखते हैं, उनका अनुकरण करने तथा उनके समान व्यवहार करने में इन्हें कोई कठिनता नहीं होती। जानवर ही इनके पड़ोसी तथा सहचारी होते हैं।

पापुआनों में अन्धविश्वास की कोई कमी नहीं। उनकी किसी वस्तु को जिसके लिए वे बहुत उत्कण्ठित हों, यदि कोई उन्हें दिखा कर जला दे, तो उसका सिर लिये बिना

पिण्ड नहीं छोड़ते। इस का हेतु यह है कि उनके विश्वास के आधार पर आग में जादू (इन्द्रजाल) निवास करता है। वस्तु के जलाने का वे यह अभिप्राय समझते हैं कि अमुक व्यक्ति उनकी मृत्यु का आकांक्षी है। इनके इस अन्ध-विश्वास में अपराधी को प्राण-दण्ड देने की रोक भी है। यदि वह व्यक्ति इसके प्रतिकार में उन्हें कुछ भेंट दे दे और अपने बाल नोंच लेने दे, तो ये उसे यम-सदन नहीं पहुंचायेंगे।

यदि हम इस बात पर विचार करें कि पापुआनों का जीवन आज सभ्य युग में भी हमारे समान न हो कर ऐसा क्यों है, तो सब से प्रथम हमें उनकी देश-अवस्था पर ध्यान देना होगा। जहां तक हम देख पाते हैं चारों ओर यहां घने जंगलों का मण्डल ही दृष्टिगोचर होता है। उनका रंग घना होने के कारण कृष्ण प्रतीत होता है। प्रथम दृष्टिपात में वन घोर विकराल भयोत्पादक राक्षस के समान प्रतीत होते हैं। यह कल्पना में ही नहीं आ सकता कि कभी कोई ऐसे दुर्गम तथा भयंकर वनों में रहने का किसी प्रकार साहस भी कर सकता है। मॉनसून (monsoon) के समय वृष्टि की कोई कमी नहीं रहती। कई सप्ताह लगातार झड़ी लगी रहती है। वृष्टि के समय नदी-नालों का जल उफनने लगता है और वह बड़ा विकट एवं विकराल आकार धारण कर लेते हैं।

इनकी जीवन-प्रणाली संकटों से परिपूर्ण है क्योंकि

जंगलों में अधिक उपज ही नहीं होती जो वे कुछ बचाकर भी रख सकें। वर्षा-ऋतु में जिन वृक्षों की जड़ें दृढ़ तथा परिपक्व होती हैं वहां विविध प्रकार के पक्षी आकर निवास करते हैं। जिस प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति में मनुष्य रहता है उसको वह अपने जैसा ही बना लेती है—यह कथन पापुआनों के उदाहरण से रत्ती २ ठीक और सही उतरता है। इसकी पुष्टि के लिए मनुष्य-हत्या का उदाहरण कुछ कम नहीं। ये धर्म के नाम पर मनुष्य का सिर नहीं उतारते, न मृत प्राणी की आत्मा को अपने वश में करने की इच्छा से। ये तो यह समझ कर कि मारे गये मनुष्य की शक्ति सिर काटने वाले की शक्ति के अन्तर्गत हो जाती है—नर-हत्या करने पर उतारू हो जाते हैं। ये अपरिचित को इस लिए मारने के लिए प्रस्तुत देखे जाते हैं कि वह इनका भोजन छीनने के लिए आया है। ये अपना भोजन कब किसी को दे सकते हैं, जब कि इन्हें ही पेट भर भोजन नहीं मिलता ! लड़ाई इनकी जीविका है।

सैंकड़ों वर्षों से ये पापुआन इसी प्रकार न्यूगिनी में रहते चले आये हैं। आज भी वहीं रह रहे हैं। परन्तु अब उनके प्रान्त में कुछ परिवर्तन होने आरम्भ हो गये हैं। इस परिवृत्ति का उन पर भी कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ा है। सभ्य संसार ने गवेषणात्मक दृष्टि से ज्ञात किया कि न्यूगिनी में सोना

अधिक रूप में उपलब्ध होता है। सभ्य देशों के बहुत से जहाज़ उस टापू के तट पर जाने आरम्भ हुए। जनसमुदाय के प्रवेश के साथ २ अनेक प्रकार के रोगों का प्रवेश होना भी आरम्भ हुआ। विपूचिका तथा महामारी आदि व्याधियों के साथ २ कई प्रकार की अन्य समस्याओं की भी उत्पत्ति हुई। संसार की सभ्य मानी जाने वाली जाति नहीं चाहती थी कि कृष्ण वर्ण की जाति किसी प्रकार भी जीवित रह सके। उन्हें सभ्यता ने सिखाया था कि कृष्णवर्ण जाति के जीवन के मूल्य से स्वर्ण का मूल्य कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर है। पर करते भी क्या, सोने के बोरों को उठाने के लिए मनुष्यों की आवश्यकता थी। जलवायु प्रतिकूल होने के कारण गौराङ्ग न्यूगिनी में शारीरिक परिश्रम करने में सफल न हो सके। उस समय यही ठीक प्रतीत हुआ कि काली चमड़ी वालों से ही यह काम लिया जाय तो अच्छा है। इसलिए उन्हें तलवार के घाट न उतार कर इसी काम में जोड़ दिया गया। यह काला वर्ण भी उनकी जीवन-रक्षा में पूरा २ सहायक हुआ।

टापू-निवासियों का ध्यान रखते हुए वहां के जलवायु को कई प्रकार से स्वास्थ्योत्पादक बनाने का प्रयत्न किया गया, पर परिणाम इसका कुछ और ही हुआ। वहां के निवासियों के लिए वहां का जलवायु उनकी प्रकृति में स्थान पा चुका था, परिवर्तन से स्वास्थ्य-प्राप्ति की अपेक्षा वे और अधिक संख्या

में कालकवलित होने लगे। प्राचीन ढंग से रहते २ वे अपने को परिवर्तित स्थिति में रखने की शक्ति ही खो बैठे हैं। इससे इनकी जीवन-प्रगति में बड़ी रुकावट आ गई है, पर इसका कोई चारा नहीं।

पापुआनों को जीवित रखने के लिए चाहिए तो यही था कि उनके वायुमण्डल में कोई स्वास्थ्यवर्धक कृत्रिम परिवर्तन न लाया जाता। जिस प्रकृति में वे परिपालित हो रहे थे, उनको उसी रूप में रहने दिया जाता, इसी बात की आवश्यकता थी। इसी आधार पर जब से न्यूगिनी में इस प्रकार की चेष्टाएं आरम्भ की गई, तब से पापुआनों की क्षीण हुई जनसंख्या फिर बढ़ने लगी।

पापुआनों के जीवन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसे वायुमण्डल में मनुष्य परिपालित होता है उसके स्वास्थ्य के लिए वही उपयोगी सिद्ध होता है। देखते हैं कि ग्राम्य बालक धूलि में लिप्त होकर स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं, नागरिक स्वच्छ वस्त्र पहन कर। उनकी परिस्थिति बदली जाय तो उनके स्वास्थ्य में लाभ की अपेक्षा हानि होने की ही अधिक सम्भावना रहती है। उनके जीवन की दिशा तथा उनके विकास का ढर्रा प्रकृति ने स्वयं ही जन्म से निर्धारित कर दिया होता है। यही बात अफ्रीका से सुदूरपूर्व की ओर बढ़ कर प्रशान्त महासागर में विद्यमान न्यूगिनी द्वीपसमूह की सभ्यता से झलकती है।

फ़ाहियान

ऐसे यात्रियों में, जिन्होंने भारतवर्ष के विविध नगरों तथा राज्यों में भ्रमण किया और अपने यात्रा-विवरण लिखकर दूसरों के मार्गप्रदर्शन के लिए छोड़े, फ़ाहियान एक साधारण सा चीनी यात्री है। फ़ाहियान के जन्म के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण उसका ठीक पता नहीं चलता। कोई तो उसे पूर्वीय सीन वंशी और कोई उसे लुङ-वंश के सुंग-वंश का बतलाते हैं। पर यह निश्चित है कि उसका जन्म उपंग में हुआ था। उपंग "पिंगयांग" प्रदेश में स्थित है और अब तक 'शानसी' के अन्तर्गत बतलाया जाता है। कहा जाता है कि पहले वह कुंग नाम से प्रसिद्ध था। उसके जन्म से पूर्व जितनी सन्तान हुई, उनमें से कोई जीवित नहीं रह सकी थी। तीन लड़के दूध के दांत टूटने के पूर्व ही ऐहलौकिक लीला संवरण कर चुके थे। उसके पिता ने कुंग को जन्म से ही भिक्षुसंघ के समर्पण कर दिया। सामनेर बनाकर वह वात्सल्यवश अपने पास ही रखता था। अकस्मात् कुंग दुःसाध्य रोगपाश में फंस गया। पिता ने घबराकर उसे विहार में प्रविष्ट करा दिया। रोग शान्त होने पर पिता ने कंग को घर पर वापिस लाना चाहा, पर कंग ने वापिस आने में आना-कानी की।

कुंग दश वर्ष का बालक था, जब उसे पितृ-वियोग का असह्य कष्ट उठाना पड़ा। परन्तु चाचा के बाध्य करने पर भी कुंग घर न लौटा। थोड़े दिनों के अनन्तर उसे मातृ-वियोग भी सहना पड़ा। यह समाचार सुन कुंग अपने घर आया। और उसे समाधि दे. फिर घर से वापिस लौट गया।

एक समय की घटना है कि कुंग सामनेरों के साथ विहार के खेत में धान काटता था। कुछ बुभुक्षित तस्करों का झुंड बलात् धानों का ढेर छीन कर दौड़ गया। कुंग ने कहा—पिछले जन्म के कर्मों का तो तुम्हें यह नीच फल मिला, अब ऐसे कर्मों से भावी जन्म को भी क्यों नीचतर बनाना चाहते हो? इस आत्मिक ध्वनि का तस्करों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे उसी प्रकार धान का ढेर वापस दे गये। सामनेर अवस्था समाप्त कर कुंग ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी समय से उसे फ़ाहियान कहने लगे। चीनी भाषा में 'फ़ा' अक्षर का अर्थ 'धर्म—विधि' और 'हियान' का अर्थ 'आचार्य—रक्षक' है, अतः फ़ाहियान का अर्थ हमारी भाषा में धर्मरक्षक अर्थात् धर्माचार्य हुआ।

धार्मिक शिक्षा भली-भान्ति प्राप्त कर जब फ़ाहियान पिटक ग्रन्थों से मार्मिक तत्व ढूंढने लगा, तो उसे पता लगा कि पिटक का जो अंश इस देश में है वह अपूर्ण है। श्रमणों से विशिष्टतया सम्बद्ध विनयपिटक इस अवस्था में है यह जान उसे अत्यन्त खेद हुआ। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जिस प्रकार भी हो सकेगा

विनयपिटक की पूर्ण प्रति भारतवर्ष से लाकर मैं इस देश के भिक्षुसंघ में उसका प्रचार करूंगा। वह इसी विचार में लीन रहने लगा। 'ह्वे किंग' 'तावचिंग' 'ह्वेयिंग और ह्वेवीई' नामक चार और भिक्षुओं से उसका मिलाप हुआ। उस समय फ़ाहियान 'चांगगान' के विहार में रहता था। पांचों भिक्षुओं ने भारत की तीर्थयात्रा का दृढ़ संकल्प किया और यह भी ठान लिया कि भ्रमण करते हुए वहां के भिक्षुओं से त्रिपिटक ग्रन्थों की प्रतियां भी लायेंगे। यह निर्धारित कर सन ४०० में सब के सब 'चांगगान' से भारत की यात्रा के लिए चल पड़े।

'चांगगान' से 'लुंग' प्रदेश हो कर वे 'कीनक्वीई' प्रदेश में आये। यहां उन्होंने वर्षावास किया। कीनक्वीई से यात्री साथ-साथ 'लियंग' होते हुए यांगलो पर्वत पार कर 'चांगयी' पहुंचे। 'चांगयी' चीन के विख्यात प्राकार के समीप 'लांग-चावा' के कुछ उत्तर-पश्चिम की ओर है।

'चांगयी' के स्वामी ने यात्रियों का बड़ा स्वागत किया। यहीं पर उन्हें 'चेयेन' 'ह्वेकीन' 'पावयुज' 'सांगशाओ' और 'सांगकिंग' नामक पांच यात्री मिले। ये सब भारतवर्ष की यात्रा के लिए प्रस्तुत थे। भिन्न २ प्रदेशों की यात्रा करते हुए आठवें मास के पूर्व सप्ताह में वे कवंध देश में आये। छः दिन पश्चिम की ओर चल कर सुगलिङ्ग पर्वत पर चढ़े। फिर पश्चिम की ओर तीन दिन चल कर 'किउराउ' नगर में पहुंचे। वहां से

चल कर 'पूहोई' पर्वतमाला में पहुंचे।

नवें मास के मध्य में ये सब पोहों प्रदेश में पहुंचे। इस स्थान पर पर्वत बहुत ऊंचे हैं। वहां जाने में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है। इस देश के दक्षिण की ओर हिमालय पर्वत पड़ता है। इस पर्वत से प्रातः सायं मोती के मुकुट की कान्ति के समान कमनीय वाष्प उठा करते हैं। फ़ाहियान कहता है कि दसवें मास के पहिले पक्ष में हम सब ईरचा प्रदेश में पहुंचे। यह धरती बड़ी उपजाऊ है और यहां के लोग ऊन के वस्त्रों का प्रयोग करते हैं।

ग्यारहवें मास के प्रथम सप्ताह में हम लोग 'पोसी' देश की सीमा के प्रदेश में पहुंचे। सत्रह दिन चल कर एक पहाड़ी और निर्धन जाति के देश में आये। ये सब असभ्य थे, अपने राजा का भी सम्मान करना न जानते थे।

ग्यारहवें मास के मध्य में सिमि जनपद में पहुंचे। यह देश 'सांगलिङ्ग' पर्वतमाला की सीमा पर है। देश की धरती ऊबड़-खाबड़ है। यहां के निवासी अत्यन्त दरिद्र हैं।

बारहवें मास में हम सब उद्यान प्रदेश में पहुंचे। इस देश के उत्तर सांगलिङ्ग पर्वतमाला और दक्षिण में भारतवर्ष है। यह उद्यान जनपद उर्द्धसुआत के दून में था। यहां के निवासियों से ज्ञात हुआ है कि यहां बुद्धदेव का चरण-चिन्ह है। यहां एक चट्टान भी है, जिस पर बुद्धदेव ने

अपने वस्त्र सुखाये थे।

यहां फ़ाहियान के साथी हेकिंग, हेना और नावचिंग तो नगार जनपद में बुद्धदेव की छाया का दर्शन करने चले गये, पर फ़ाहियान और उसके शेष साथियों ने यहां ठहर कर वर्षा-वास किया। वर्षा समाप्त होने पर फ़ाहियान आदि दक्षिण की ओर उतर कर सूहोतो में आये। सूहोतो प्रदेश का नाम पुराणों में शिवि दिया गया है। यह सूहोतो प्रदेश वही है जहां आजकल बुनेर है। वहां एक स्तूप था जहां स्वर्ण तथा रजत के पत्र चढ़ाये जाते थे। यहां बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार था।

फ़ाहियान आदि यहां से चल कर गांधार जनपद में गये। इस जनपद के विषय में केवल एक जातक की कथा का उल्लेख मिलता है, जिस में बुद्ध देव के एक जन्म में किसी को नेत्र-दान देने का वर्णन है।

गांधार से चल कर अब तक्षशिला पहुंच गये। तक्षशिला को बौद्ध लोग तक्षशिरा नाम से पुकारते हैं। फ़ाहियान ने बतलाया है कि तक्षशिरा इसे इसलिए कहते हैं कि यहां बुद्धदेव ने किसी जन्म में अपना सिर किसी व्यक्ति को दान कर दिया था।

फ़ाहियान आदि वहां से दक्षिण की ओर प्रस्थित हुए और चौथे दिन पुरुषपुर पहुंचे, जिसे आजकल पेशावर कहते हैं। यहां पर फ़ाहियान को ज्ञात हुआ कि श्री बुद्धदेव ने

चल कर वे संकाश्य नामक जनपद में पहुंचे । संकाश्य नगर फ़र्रुखाबाद के जिले में शम्मसाबाद के परगने में स्थित है । इसे आजकल संकसिया नाम से पुकारा जाता है । फिर फ़ाहियान ने "नाग" विहार में डेरा जमाया । नाग विहार संकाश्य नगर में उसी स्थान के समीपवर्ती था जहां बुद्ध देव त्रयस्त्रिंश धाम से शक्र और प्रजापति के साथ अवतीर्ण हुए थे । नागविहार के सम्बन्ध में फ़ाहियान ने लिखा है कि इस स्थान के पास एक श्वेतकर्ण नाग है । वही भिक्षुओं का दानपति कहलाता है । जनपद को वही पुष्कल अन्न देता है । यथासमय वृष्टि होती है और यहां ईतियां नहीं पड़तीं । इसके प्रति श्रद्धा होने के कारण भिक्षुओं ने इस के लिए विहार बना दिया है । उसके बैठने के लिए आसन प्रतिष्ठित है, भोग लगता है और पूजा होती है ।

यहीं फ़ाहियान और उसका साथी नावचिंग नागविहार में रहे और यहीं उन्होंने वर्षा व्यतीत की । फिर यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में सात योजन चलकर वे कान्यकुब्ज में पहुंचे । कान्यकुब्ज गंगा के किनारे था । यहां बुद्ध ने अपने शिष्यों को संसार की असारता का उपदेश दिया था । फ़ाहियान और नावचिंग वहां से गंगा पार कर आले नामक ग्राम में पहुंचे । यहां बुद्ध देव के बैठने, भ्रमण करने और उपदेश देने के स्थानों पर स्तूप बने थे । आले से दक्षिण-पूर्व दिशा में तीन योजन चलकर साकेत पहुंचे ।

साकेत से दक्षिण आठ योजन चलकर दोनों यात्री श्रावस्ती पहुंचे। श्रावस्ती उस समय उजाड़ के समान थी, केवल २०० के लगभग घर विद्यमान थे। यहां जेतवन विहार के आसपास अठानवें विहार देखकर फ़ाहियान ने बुद्धदेव के छयानवें पाखंड के आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ और धर्मचर्चा की कथा लिखी है। पाखंड यह पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ सुन्दरदास जी के सर्वांगयोग ग्रन्थ से कुछ स्पष्ट होता है :—

"इन बिन और उपाय है सो सब मिथ्या जान।
छह दरसन अरु छयानवें पाखंड कहूं बखान॥"

श्रावस्ती से पूर्व एक योजन के लगभग कपिलवस्तु नगर का खंडहर हमारे यात्रियों को मिला। कपिलवस्तु के पूर्व पचास मील पर उन्होंने लुम्बिनी वन देखा। यही बुद्धदेव का जन्मस्थान था। गवेषणा करके आजकल विद्वानों ने लुम्बिनी का पता लगा लिया है। यह नेपाल की तराई में अबतक भगवानपुरे के पास है। वहां अशोक का टूटा सा स्तम्भ भी खड़ा है, और उसके लेख से यह प्रमाणित हो चुका है। यदि बौद्ध ग्रन्थों को प्रामाणिक समझा जाय तो कपिलवस्तु का जनपद बाणगंगा और रापती के मध्य में है। शनैः-शनैः वह कुशी-नार में पहुंच गये। कुशीनार से दक्षिण-पश्चिम बारह योजन चल कर यात्रियों को वह स्थान मिला, जहां से बुद्धदेव ने लिछवी लोगों को कुश नगर की ओर परिनिर्वाण में आते समय लौटाया था। उस स्थान से थोड़ी

क्षार जल में भोजन पका कर उदर-दरी को यथाकथंचित् पूर्ण करते थे। अच्छा पानी तो प्रति व्यक्ति एक पाव से अधिक न मिलता था। पर जल्दी ही वह भी समाप्त हो गया। व्यापारी लोग सोच विचार कर बोले—जलपोत की गति के अनुसार पचास दिन में 'कांगचाव' पहुंच जाना चाहिए था। परन्तु दिन बहुत बीत गये, कहीं राह तो नहीं भूले ? तब पश्चिमोत्तर तट की गवेषणा में चले। रात दिन चल कर बारह दिन में चांगक्कांग प्रदेश की सीमा पर लाव पर्वत के दक्षिण तट पर जा लगे। यह विचार था कि सम्भव है यहीं पहुंच कर अच्छा खाद्य-पेय मिल सके। अनेक संकट सहे, बहुत दिन चिन्तार्णव में डूबे रहे, अकस्मात् इस तट पर पहुंचे। लेइ और कोः शाकों को देखा। इससे ज्ञात हुआ कि यही हान देश है। फिर थोड़ी देर में क्या देखते हैं कि न वहां कोई रहने वाले जन प्रतीत होते हैं, न ठीक जाने-आने के मार्ग का चिन्ह ही जान पड़ता है। वे नहीं समझ रहे थे कि अब कहां हैं। कोई कहता था कि अभी 'कांगचाव' नहीं आये। कोई कहता था कि कहीं पीछे न छोड़ आये हों। त्रिशङ्कु के समान सब के सब अन्तराल में ही लटक रहे थे। परिणामस्वरूप एक छोटी सी नौका में बैठ एक खाड़ी में घुसे ताकि यदि कोई मनुष्य दृष्टिगोचर हो सके तो उस से इस स्थान के विषय में पूछ-ताछ कर कुछ निर्णय करें। इतने

में भाग्यवश दो व्यक्ति दीख पड़े। उन्हें बुलाया गया। वे घबराये। फ़ाहियान ने पहले उन्हें खूब ढाढ़स बन्धाया, फिर पूछा कि बतलाओ, तुम कौन लोग हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम बुद्ध देव के शिष्य हैं। फिर पूछा—पर्वत पर क्या ढूंढने आये थे? वे बताने लगे कि कल सप्तम मास की पन्द्रहवीं तिथि है, बुद्ध देव को अर्पण करने के लिए सफ-तालू की गवेषणा कर रहे थे। फिर पूछा कि यह कौन जन-पद है? उन्होंने उत्तर दिया कि सिंगचाव के अन्तर्गत चांगक्वांग प्रदेश की परिधि है, जो सीन वंश के अधिकार में है। यह सुनते ही व्यापारी लोग नौ नौ हाथ कूदने लगे। उन्होंने झटपट रुपया और माल अपने दासों से मंगवा कर चांगक्वांग के प्रदेशाधिप के पास भेजना आरम्भ किया।

शासक ले-ए दृढ बौद्ध धर्मानुयायी था। उसने जब सुना कि एक श्रमण सूत्रों और चित्रों को लेकर नौका के द्वारा समुद्र पार कर आया है तो रक्षक जनों को साथ ले वह बन्दर पर आया। वह फ़ाहियान से मिला। सूत्रों और चित्रों को ले अपने स्थान पर वापिस आया। व्यापारी लोग वहां से यांगचाव की ओर लौट गये। सिंगचाव पहुंच कर फ़ाहि-यान पूरे एक वर्ष तक रोक रक्खा गया। फिर वर्षा बिता कर फ़ाहियान ने सब आचार्यों के वियोग से आतुर हो चांगगान जाने की इच्छा प्रकट की। पर परमावश्यक कार्य जान कर

मानव मुण्ड के लोलुप

आसाम के नागा

चिरकाल से बहने वाली मानव संस्कृति के अभ्युदय की धारा इस उन्नतावनत वसुन्धरा पर असंख्य उपधाराओं में भिन्न २ दिशाओं में भिन्न २ मार्गों से बहती चली आ रही है। इन उपधाराओं में बहुत सी लघु उपधाराएं विषम-तल पृथ्वी में विस्तार का उचित वातावरण न पाकर मूलस्रोत से छिन्न-भिन्न होने के कारण वर्तमान इतिहास की उषामयी किरणों के फूटने से प्रथम ही रसातल में लीन हो गई। रही-सही अल्प धाराएं बरसाती नदी-नालों के समान क्षणिक आलोक दिखलाकर अतीत के चित्रपट पर क्षणिक स्मृद्धि के चिन्ह चिन्हित कर सदा के लिए अस्त हो गई। किसी ने आगे बढ़ने का मार्ग न पाकर झीलों का रूप ही धारण करने में अपने आपको कृतकृत्य समझा। कोई २ तो अजस्र काम्य वातावरण पाकर मार्ग के अवरोधक गिरि-कन्दराओं को चीरती-फाड़ती क्रमशः विशाल नदी का रूप धारण करने में सफलता प्राप्त कर सकीं। इन्हीं में कितनी ही प्राचीन धाराएं लीन हो गई, नवीन उपधाराएं भी इनसे पृथक् हो भिन्न २ दिशाओं में निःसंकोच फैलती चली गई। इस

क्रमिक विभाजन ने पृथ्वी पर अनेक मत, विभिन्न धर्म, विविध जीवनोपाय और मनमानी असंख्य संस्कृतियों के कारण एक विचित्र अजायबघर का रूप धारण किया है। प्रायः एक ही देश और एक ही काल में भिन्न २ संस्कृति के विकास की विभक्त श्रेणियां दृष्टिगोचर हो रही हैं।

कोई २ जाति पिगमियों के समान मानव जाति में निकृष्ट कोटि की जीवन-प्रणाली का घृणास्पद चित्र सामने उपस्थित करती है, तो अन्य कई उन्नत जातियां कला, विज्ञान तथा उत्कृष्ट कोटि के साहित्य की जगमगाती ज्योत्स्ना से आभा प्रकट करती हैं।

भारत सर्वसाधारण देश नहीं प्रत्युत यह एक महापुरुषों, जातियों, कलाकारों तथा महात्माओं की पवित्र जन्मभूमि, अनेक सभ्यताओं, संस्कृतियों, साम्राज्यों और भाषाओं का 'सुजलां सुफलां सस्यश्यामलाम्' स्मृति के योग्य जादू-भरा महाद्वीप है। सभ्यता के सर्वप्रथम उद्गम स्थलों में उच्च स्थानासीन है। यदि हमें यहां मानवीय स्थिति की निकृष्ट अवस्था से उत्कृष्ट अवस्था तक विविध चित्र मिलें तो कोई विशेष आश्चर्य की घटना नहीं। हम जीते-जागते ४५ करोड़ भारतवासियों का सजीव चित्र खींचने के लिए उद्यत हुए हैं। एक ही चित्रपट में भिन्न २ तूलिकाओं से भिन्न २ वर्ण भर कर ही चित्र खींचने का साहस किया जायगा। इसलिए हमें वार २ दृष्टि-विन्दु घुमा-

घुमाकर अनेक दृष्टिकोणों से विविध चित्रों में इसको उतारना पड़ रहा है। इस समय तो हम देश में मानवीय स्थिति की निकृष्ट कोटि का चित्र खींचने के लिए ही उद्यत हुए हैं। एक-दम छलांग मार कर पूर्वी सीमा-प्रदेश पर पहुंच कर इसी श्रेणी की, प्रत्युत इससे वढ़कर रुधिर-पायी एक नागा जाति के जीवन की झलक दिखायें। यह जाति आज भी वर्मा और आसाम की सीमा पर अड्डा जमाये हुए दुर्गम वन्य पर्वत-श्रेणियों में अपने पुरातन रूढ़ि-संस्कारों, सामाजिक विचारों, परम्परागत प्रथाओं, लड़ाई-झगड़ों को ज्यों का त्यों जीवन का मुख्य अङ्ग वनाये हुए एक निराले विश्व में वस रही है, जिसमें निकटवर्ती सभ्यता की गन्ध को प्रसृत करना भी नहीं सहन कर सकती। इसका जीवन सर्वसाधारण जीवन से भिन्न है। जहां उत्तम कोटि के आविष्कर्ता तथा साहसी यात्रियों के जीवन का दिग्दर्शन कराना है, वहां निकृष्टतम जाति के अमानुषी सभ्यता तथा जीवन पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। कटु के वाद मिष्ट और मिष्ट के वाद कटु का विशेष मधुर अनुभव होता है। भिन्न २ झांकियों के देखने से मानव मन भी नहीं ऊवता।

सिर पर व्याघ्र के चित्रित चर्म से मढ़ा हुआ वेत्र का वना विलक्षणाकार लगभग हाथ-भर ऊंचा एक कंगूराकृति शिर-स्त्राण है, जिस पर शोभा वढ़ाने के लिए पीतल की एक चमकीली पट्टी पर लाल वर्ण के वालों से वन्धे भैंसों के शृङ्ग के कई छोटे-

छोटे चांद टंके हुए हैं। इस शिरस्त्राण पर सामने की ओर वन्य बैल के सींगों जैसा लाल-पीले रंग का एक विचित्र आभूषण सा बन्धा हुआ है, जो हाथ भर ऊंचे शिरस्त्राण से भी उतना ऊंचा उठा हुआ है। इस विचित्र शिरस्त्राण के इधर-उधर कई छोटी लकड़ी के टुकड़े लटक रहे हैं, जिन पर कहीं-कहीं लाल लाल रत्तियां टंकी हुई हैं। इनके बीच-बीच में कहीं-कहीं मनुष्य के बालों के गुच्छे भी दृष्टिगोचर होते हैं। गले में विभिन्न रंग के बालों की रस्मियों में गुथी हुई वराटिकाओं की माला, पिण्डलियों और बाहुओं में पहनी हुई चमकती चूड़ियां, दोनों स्कन्धों पर पड़ा हुआ लाल-पीले चमर के सदृश बालों और कौड़ियों की मालाओं से सज्जित रीछ की खाल जैसा वस्त्र, और इन सब से बढ़-चढ़ कर, पीछे की ओर ऊपर को उठा हुआ लोमड़ी की बालदार पूंछ जैसा एक बनावटी पुच्छल्ला भी है, जो सम्भव है, बाल आदि को ऐंठ कर बनाया गया हो। इस विचित्र वेषभूषा से सुसज्जित एक हाथ में भाला और दूसरे में खांडा लिये, जिस के साथ तुम्बी काट कर रचा हुआ अस्वाभाविक नर-मुण्ड भी लटक रहा है, कापालिक सदृश यदि कोई व्यक्ति अकस्मात् आपके सम्मुख आकर खड़ा हो जाय तो सम्भव है आप उसको ऐहलौकिक प्राणी मानने में भी संकोच करें। पर यही आसाम की सीमा पर रहने वाली नागा जाति के वीरों का विशेष उत्सव के समय धारण करने योग्य प्रिय वेष है।

आसाम प्रान्त की मनीपुर रियासत और उसके निकटवर्ती घाटियों में कई जातियों के रूप में फैले हुए ये नागा, जगत् के विचित्र प्राणियों की गणना में हैं। संख्या में सम्भव है ये कुछ परिगणित संख्या में ही हों, पर संसार को ये मानों चुनौती दे रहे हैं।

यदि किसी व्यक्ति को अपना सिर प्यारा है तो वह इनके देश में प्रविष्ट होने का साहस न करे। यद्यपि अंग्रेज़ी राज्य में इन लोगों को वह स्वतन्त्रता नहीं रही थी कि मनमानी करते रहें, तथापि नागाओं के देश में यदि कोई अपरिचित जन चला जाय तो उसका शिरश्छेद भय से खाली नहीं। अवसर पाते ही किसी भी व्यक्ति का सिर काट लेना इनके बायें हाथ का खेल है। कटे हुए नर-मुण्ड को पाकर इनके उल्लास की सीमा आकाश को छूने लगती है। इन लोगों की दृष्टि में यह बड़ी वीरता है। इहलोक तथा परलोक के सुख का सब से बड़ा साधन है। संसार में नागाओं के समान अन्य कई प्रकार की वन्य जातियां पाई जाती हैं, जो मनुष्य का सिर काटने को धार्मिक कृत्य समझती हैं। परन्तु नागा उन सब के शिरोमणि हैं। वे इस को उत्कृष्ट कोटि की कला समझते हैं। इनके प्रतिष्ठा-साधन की कसौटी यह है कि जो व्यक्ति अधिक मानव मुण्ड काट कर लायेगा, वही इस जाति में उत्कृष्ट समझा जायगा। इस प्रथा का महत्व यहां तक बढ़ा कि

जब तक कोई व्यक्ति दो चार नर-मुण्ड न काट ले, तब तक कोई स्त्री उसे पति बनाने के लिए तैयार नहीं होती।

यह मानव रक्त की पिपासा इनमें इतनी बढ़-चढ़ कर क्यों है—इसका उत्तर इनकी परम्परागत प्रथाओं से ही उपलब्ध हो सकता है। ये अपनी प्राचीन रूढ़ियों की शृङ्खला में बन्धकर अपने ही में मस्त हैं। अतीत के धुन्धले अंचल में लीन किसी युग में सर्व-प्रथम प्रकट होकर कुछ असभ्य विचारों ने धीरे २ पदार्पण कर लिया, पर अब भी ये लोग मेषानुगतिक न्याय से अन्ध-विश्वासी होकर लकीर के फ़कीर बन रहे हैं। अन्धविश्वासों में ये इतने फंस चुके हैं कि उनसे निकलना ही कठिन हो गया है। नर-हत्या की प्रवृत्ति के मूलान्तर्गत कई विचित्र प्रेरणाएं अपना काम कर रही हैं, जिनमें परम्परागत कूट २ कर भरा हुआ जाति-वैमनस्य भी है। संसार की अन्य जातियों की तरह नागा जातियों में भी कई कुटुम्ब सदा के लिए वैमनस्याग्नि में दहकते रहते हैं। इनको परम्परागत ज्ञान होता है कि अमुक कुटुम्ब ने अमुक कुटुम्ब के व्यक्ति इतनी संख्या में मारे थे। जब तक मरे व्यक्तियों की संख्या पूरी न कर लें, तब तक कुटुम्ब को शान्ति नहीं होती। पूर्ण प्रसन्नता तो तब होती है जब उससे अधिक संख्या में नर-मुण्ड काट लिये जायं। दूसरी प्रेरणा इस प्रथा के मूल में यह है कि अन्य कई जंगली जातियों के समान नागाओं का भी अटूट विश्वास है कि किसी भी जानवर या नर को मारने से देवता के प्रति एक

विशेष प्रकार का बलिदान हो जाता है। इस प्रकार एक बलवती शक्ति हस्तगत हो जाती है जिससे मृगया तथा कृषि में पूर्ण सफलता मिलती है। इसी प्रकार इनमें एक और भी विश्वास प्रचलित है कि जिन मनुष्यों का सिर वे काट लेंगे वे परलोक में उनके दास बनेंगे। इसी अन्ध-विश्वास के आधार पर नागाओं में किसी भी बड़े व्यक्ति अर्थात् जाति के मुख्य व्यक्ति के मरने पर अधिक से अधिक व्यक्तियों की बलि चढ़ाना अन्त्येष्टि क्रिया का आवश्यक अंग माना गया है।

नागा प्रदेश की उत्तरीय सीमा में बसनेवाली जातियों में नर-मुण्डों के उतारने की अपेक्षा नर-बलि देना विशेष महत्त्व की बात समझी जाती है। इसके लिए या तो चोरी से कोई व्यक्ति पकड़ लिया जाता है, या मनुष्य के घातक दक्षिणी नागाओं से वह खरीद लिया जाता है। ५०० रु० तक बलि के लिए सर्वतः पूर्णाङ्ग मनुष्य मिल जाता है। बलिदान के दो सप्ताह पूर्व से उसे मधुपान द्वारा खूब मस्त किया जाता है। फिर निर्धारित तिथि को बलि देने वाले मकान पर सब से ऊंची सीढ़ी पर ले जा कर उसका सिर खांडे से उड़ा दिया जाता है। जब सीढ़ियों से नीचे की ओर रुधिर-धारा अविश्रान्त रूप में बहती है तब इस बात से प्रसन्नता प्रकट की जाती है कि अब घर भूत-प्रेत का वास-स्थान नहीं बन सकेगा। तब शव के टुकड़े २ करके प्रत्येक घर में, गांव के दरवाज़ों पर, चौराहों

पर तथा खेतों में किसी वृक्ष पर टुकड़े लटका दिये जाते हैं। यह सब इस उद्देश्य से किया जाता है कि ऐसा करने से फ़सल खूब पैदा होगी, ईतियों से ग्राम की पूर्णतया रक्षा होगी। यदि किसी विशेष अवसर पर विशेष प्रथा में अनिवार्य रूप से नर-मुण्डों की आवश्यकता हो, तो नागा जाति समष्टिरूप से किसी आस-पास के कुटुम्ब पर आक्रमण करती है।

इस समय वे विशेष प्रकार के वस्त्र पहनते हैं। ऐसे आक्रमण को एक धार्मिक कृत्य समझा जाता है। इस कृत्य में विशेष संयम की आवश्यकता होती है। इनका आक्रमण बिना किसी चुनौती के होता है। नागाओं के हथियार भाला, खांडा, धनुष-बाण तथा डावो हैं। ये लोग काटे हुए नर-मुण्डों को ग्राम के निकट वृक्षों के रिक्त तनों में गुप्त रूप से रख छोड़ते हैं। यदि कोई शूरवीर किसी शत्रु जाति की स्त्री या बालक का सिर काट कर लाता है तो उसकी प्रशंसनीय वीरों में गणना होती है। शत्रु की सीमा के गांवों में जाकर ऐसा साहस करना भय से खाली नहीं होता। निर्भीकता ही शूरवीर का प्रधान गुण है। गुदना गुदी हुई उत्तरीय प्रान्त की स्त्रियों की हत्या से यह लोग बहुत घबराते हैं, क्योंकि वे अपनी स्त्रियों की हत्या का प्रतिकार बड़ी नृशंसता से लेने की चेष्टा करते हैं।

इस हत्या-काण्ड के नृत्य का अभिनय अब बहुत ही कम होने लग गया है। अब तो शासन के भय का भूत उनके सिरों पर भी

सवार रहता है। हुआ, कभी लुक-छिप कर यदि कोई हत्या कर ली तो अलग बात है, स्पष्ट रूप से ऐसा करने के लिए अब जान हथेली पर रखनी पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वर्बर प्रथा की सर्वथा इतिश्री नहीं हो सकी है फिर भी आधुनिक दृष्टिकोण से नागा जाति अन्य जंगली जातियों से कहीं आगे बढ़ चुकी है।

बहुत सी नागा जातियां बड़े वैज्ञानिक ढंग से खेती करती हैं। धातुओं से शस्त्रादि-निर्माण का काम भी भली भांति जानती हैं। अगामी और तांगखुल जाति के नागा पहाड़ों की ढलती हुई धरती पर सीढ़ी उतार जल-प्रबन्ध के द्वारा चावलों की खेती करते हैं। कपास, मक्का, बाजरा आदि भी बोये जाते हैं। कुत्तों से अहेर का काम भी लेते हैं और उन्हें अपनी भोजन-सामग्री भी बनाते हैं। मछली के शिकार का इनका एक बहुत ही विचित्र ढंग है। पहले-पहल यह मछली मारने से पूर्व उसे मादक पदार्थों से मस्त कर देते हैं। फिर उसे मारते हैं। साधारण करघों पर ही ये लोग बहुत उत्तम कपड़ा बुन लेते हैं। इस कला में तांगखुल जाति के नागा सिद्धहस्त हैं। नागाओं की भाषा में जुलाहे को 'तांगखुल' कहते हैं। रंगाई के काम में भी ये बड़े प्रवीण होते हैं। इसके अतिरिक्त, लुहार का, कसेरों का और अन्य धातुओं से बर्तन बनानेवालों का तथा तक्षक (बढ़ई) का काम भी भली भांति जानते हैं। पार्थिव

सभ्यता की बहुत सी बातों में ये मेलानेशियन जातियों से मिलते-जुलते हैं। इनकी प्रत्येक उपजाति की भाषा तथा उच्चारण में अन्तर होता है। इनकी ये बोलियां तिब्बती और बरमी भाषाओं के कुटुम्ब से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं।

नागाओं में सामाजिक व्यवस्था भी अपने ढंग की निराली सी है। कुटुम्ब से बाहर ही विवाह करने की प्रथा है। समा, चांग आदि कुछ जातियों में बहुपतित्व (Polyandry) की प्रथा भी प्रचलित है।

नागा जाति कई उपजातियों में विभक्त है। जैसे—कोनथांक, तांगखेल, माओ, एओ, चांग आदि। चाहे ये जातियां भिन्न २ आदिम जातियों के मिश्रण से हुई हों, फिर भी आकार, संस्कार आदि में एक दूसरे से भिन्न ही हैं।

अन्य जंगली जातियों की प्रथा के अनुसार इनमें भी ग्राम के किसी २ भाग में अविवाहित युवकों को विवाहित घरों में सोने की आज्ञा नहीं, अतः पृथक् ही इनके शयनागार तथा साम्प्रदायिक स्थान होते हैं। इनमें पत्नि-त्याग का नियम भी प्रचलित है। स्त्रियां अधिकांश में नग्न सी रहती हैं। पर कुछ उपजातियों में गुप्ताङ्गों को आवृत्त करने के लिए कमर पर वस्त्र डाल लेती हैं। इनमें गोदना गुदाने की बहुत ही प्रचलित रीति है। भ्रूण-हत्या को यह लोग बुरा नहीं समझते। नाचने गाने में यह बहुत ही कुतूहल प्राप्त करते हैं। जहां

कैलास-यात्रा

कविशिरोमणि कालिदास ने मेघदूत काव्य में कैलास का महत्व इस प्रकार वर्णन किया है:—

"गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः॥"

अर्थ—(यक्ष कहता है) हे मेघ ! तुम आगे बढ़कर कैलास पर्वत पर जाना, जिस के प्रान्त रावण ने अपनी भुजाओं से कम्पा दिये थे। जो देवाङ्गनाओं के दर्पण के समान है। यह पर्वत श्वेत कमल के समान अपने उच्च शिखरों को आकाश में फैलाये हुए है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे महादेव का अट्टहास एक स्थान पर एकत्रित हो गया है। कवि-कल्पना के आधार पर हास का वर्ण श्वेत है। गीता में भी कैलास को भगवान् की विभूतियों में लिखा है—'मेरुः शिखरिणामहम्' पहाड़ों में मैं मेरु अर्थात् कैलास हूं।

पौराणिक गाथा है कि जम्बूद्वीप के मध्य में विविध वर्णों से विभूषित कैलास पर्वत है। उसका पूर्वभाग ब्राह्मण जैसा श्वेत, दक्षिण भाग वैश्य जैसा पीला, उत्तर भाग क्षत्रिय जैसा लाल,

पश्चिम भाग शूद्र जैसा कृष्ण वर्ण है। चारों दिशाओं में रक्षा के लिए चार पर्वत हैं, जिन पर क्रमशः कदम्ब, पीपल, जम्बू और वट वृक्ष हैं।

स्वीडन देश के प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री डा० स्वेनहेडिन कैलास के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं—"चाहे कोई परदेशी भी क्यों न हो, जब वह कैलास के निकट जाता है तो उसके मन में गम्भीरता तथा श्रद्धा के भाव भर जाते हैं। निःसन्देह कैलास पर्वत संसार भर की प्रसिद्ध विभूति है। एवरेस्ट शिखर और माउण्टब्लॉक उसके सामने नहीं ठहर सकते"।

कैलास पर्वत-श्रेणी काश्मीर से लेकर भूटान तक विस्तृत है। इसमें ल्हाछू और झोङ्छू नदियों से घिरे हुए भाग को कैलास पर्वत के नाम से व्यवहृत किया जाता है। इसके उत्तरी शिखर पर शिवलिङ्ग की आकृति का कैलास-शिखर विद्यमान है। यदि कैलास पर्वत की यात्रा करनी हो तो ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु ही उचित है। शीतकाल में कैलास के चारों ओर १० से २० फ़ीट तक हिम गिर जाती है। कैलास की परिक्रमा यदि शनैः शनैः की जाय तो तीन दिन में समाप्त हो सकती है। तिब्बती निङ्कोर परिक्रमा को एक ही दिन में समाप्त कर डालते हैं। धर्मनिष्ठ तिब्बती लोग कैलास की तीन या तेरह परिक्रमा करने में विशेष धार्मिक लाभ समझते हैं। उनकी भावना है कि अधिक परि-

क्रमाओं के करने से मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है। कुछ विशेष धर्मपरायण व्यक्ति बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ साष्टाङ्ग विधि से कैलास की पन्द्रह दिन में परिक्रमा करने में पुण्यातिरेक का अनुभव करते हैं। जैसे भारत में लोग आधि-व्याधि की शान्ति के लिए स्वयं अनुष्ठान न करके दक्षिणा देकर पण्डितों से पाठ-पूजन करवाते हैं, उसी प्रकार तिब्बत के धनी लोग आधि-व्याधि, आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक पीड़ाओं की शान्ति के लिए निर्धन बुभुक्षितों को धन तथा आहार देकर परिक्रमा करवाते हैं। उनकी भावना है कि घोड़े पर चढ़कर परिक्रमा करने से यात्रा का फल वाहक को मिल जाता है, पर परिक्रमा का फल उसके वाहन को मिलता है।

यदि कोई समृद्धिशाली तिब्बती मरता है तो उसकी आत्म-शान्ति के लिए उसके सम्बन्धी निर्धनों को धन तथा भेड़ देकर कैलास की परिक्रमा करवाते हैं। पवनधर्म्मी या बौद्धमतानुयायी तिब्बती कैलास की उलटी ओर से परिक्रमा करते हैं। इन लोगों में भी साष्टाङ्ग-दण्डवत्-प्रदक्षिणा की प्रथा विद्यमान है।

कैलास के पश्चिम में न्यनरी (या हिरन पर्वत) उत्तर में डिरफुक् (डिफिनफुक् गोम्पा) पूर्व में जुंठुलफुक् गोम्पा, दक्षिण में गेङ्टा और सिसिलुङ् गोम्पा हैं।

कैलास के चारों ओर चार थुदुप हैं। इन स्थानों पर यात्री लोग अपने बाल तथा रुधिर चढ़ाते हैं। सीधे लेटकर मरने

का अभिनय इसलिए करते हैं कि उनका विश्वास है कि कैलास पर मरने से मनुष्य कैलासपति महादेव के चरणों में स्थान पाता है।.कैलास के चारों ओर चार छकछल गङ हैं, जहां साष्टाङ्ग दण्डवत् करने का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। इन्हें चंगजागङ भी कहते हैं (१) तरछेन के ढाई मील आगे (२) न्यनरी गोम्पा के निकट तीन मील पर (३) डोल माला के पास (४) खंडो-सङलमछू के सम्मुख द्वार पर।

कैलास के पश्चिम भाग में सेरसुङ नामक स्थान में एक बड़ी ध्वजा लहराती है। यहां प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन एक बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता है। यात्री लोग चतुर्दशी के दिन उस विशाल पताका को उतारकर, कई प्रकार के वर्णों से सुसज्जित मन्त्रयुत पताकाओं और झंडों को उसमें बांधकर सायंकाल के समय आधा खड़ा कर देते हैं। पूर्णमासी के दिन उसे पूर्णरूप में खड़ा कर परिक्रमा के लिए अग्रसर हो जाते हैं।

ध्वजारोहण के उत्सव पर सरकार भली भान्ति देख-भाल करती है। ध्वजा खड़ा करने के काम को पुरङतकाल कोट की जनता स्वयं अपने हाथों से करती है।

वैशाख पूर्णिमा को भगवान् के जन्म, ज्ञानोदय तथा परम-पद का दिन मानते हैं। बौद्धधर्मावलम्बी इस तिथि को परम पवित्र मानते हैं। इस अवसर पर यहां एक बड़ा उत्सव होता है जिसमें चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, जापान, स्याम, लंका,

बरमा आदि के बौद्ध यात्री परिक्रमा के लिए एकत्रित होते हैं। यह विशेष वर्ष की विशेष यात्रा मानी जाती है। इस अवसर पर कैलास-यात्रा का पुण्य सब यात्राओं से अधिक समझा जाता है।

ध्वजा के पश्चिम की ओर लगभग २०० गज़ की दूरी पर छोरतेन कङ्नी नामक एक रक्तवर्ण का द्वार है, जिसमें से होकर पशुओं को ले जाना विशेष सुखकारक माना जाता है।

ध्वजा के एक मील आगे चलने पर ल्हाछू के दाहिने किनारे के पर्वत न्यनरी गोम्पा के दक्षिण में प्रसिद्ध सिद्ध मिलरेपा की गुफा, नदी की वाम दिशा में मार्ग से लगभग ढाई सौ गज़ की दूरी पर वाममार्गी नरोपुंजुंग की गुहाएं हैं। तिब्बतियों का कथन है कि कैलास पर्वत के आसपास देवी देवताओं के स्थान अधिक हैं।

कैलास शिखर का उत्तरी दृश्य इतना मनोरञ्जक तथा मुग्ध-कारी है कि अतिचंचलप्रकृति व्यक्तियों के मन की चंचलता को भी एकबार भंग कर एकाग्रता, तन्मयता तथा समाधिस्थता के भावों का उनमें संचार कर देता है।

डिरफुक गोम्पा से डेढ मील की दूरी पर सड़क छोड़कर दूसरी ओर उतरकर जाने से बिल्कुल सामने जम्बपङ और घोगेलनोरसङ नामक पर्वतों के मध्य में एक भव्य हिमाच्छा-दित घाटी दृष्टिगोचर होती है, जिस का नाम खंडोसङलम ला

है। तिब्बती शास्त्रों में ऐसा बतलाया है कि कैलास की बारह परिक्रमा करने के पश्चात् यात्री तेरहवीं परिक्रमा में उस मार्ग से जाने का अधिकार रखता है।

कैलास के पूर्व में डोलमा ला से दो सौ गज की दूरी पर उतर कर गौरीकुण्ड नामक बड़ा सुन्दर लघु सरोवर है। तिब्बती अपनी बोलचाल की भाषा में उसे ठुकी जिङ्बू नाम से पुकारते हैं। यह सरोवर कपाल की आकृति के समान लगभग एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है। यह निरन्तर हिमाच्छादित रहता है। यहां हिम का अभाव कभी दृष्टिगोचर नहीं होता। यात्री लोग यष्टिका आदि विविध प्रकार के साधनों से बर्फ तोड़ तोड़ कर स्नान करने का साहस करते हैं। जल इतना शीतल है कि स्नान करने के लिए कई यात्रियों का मन ही नहीं होता। केवल स्पर्शमात्र से जल की शीतलता का अनुभव करके ही ठिठुर-से जाते हैं। वह केवल आचमन और मार्जन द्वारा आत्मसंतुष्टि कर लेते हैं। कई बार तो इतना अधिक हिमावृत्त होता है कि हिम तोड़ कर आचमन करना भी कठिन हो जाता है। यात्री लोग गौरीकुण्ड के जल को गंगाजल के समान प्रसाद रूप से पात्रों में भर भर कर घर ले जाते हैं।

हम यह ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि गौरीकुण्ड बारह महीने बर्फ से ढका रहता है। श्रद्धालु लोगों की भावना है कि एक समय ग्यमृनेश की एक स्त्री अपनी गोद में एक बच्चे को

लेकर कैलास की परिक्रमा में दत्तचित्त थी। बारहवीं परिक्रमा में जब वह कुण्ड के समीप जल लेने को झुकी तो बच्चा गोद से छूटकर जल में डूब गया। बच्चे के शव से जल कुछ दिन तक अपवित्र रहा। इस प्रकार की अन्य घटना कहीं जल को फिर अपवित्र न कर दे, इसलिए वह सदा हिमाच्छादित ही रहता है।

तरछेन जहां से कैलास की यात्रा आरम्भ होती है सिलुङ मठ हो कर सात मील की दूरी पर, शिखर की ऐन जड़ में खड़ी भित्ति की मेखला में सेर दुङ चुकसुम (सोने के स्तूप की तरह) उन्नीस स्तूप हैं जो तीन भागों में विभक्त हैं।

डेकुङ नामक विहार के प्रधान लामाओं की यहां समाधि है। कैलास शिखर से दक्षिण मुख की सीढ़ियों से होती हुई सेर-दुङ चुकसुम के निकट हिम गिर कर छोटे २ खण्डों में विभक्त हो जाती है। यहां से चरोक फुर दोद ला होकर उतर कर, लगभग चार मील नीचे की ओर छोकपाला या कपालसर नामक पाषाण-खण्डों के मध्यगत दो सरोवर हैं। इनमें उपरि-भाग-स्थित सरोवर का जल काला और निम्न देशवर्ती सरोवर का पानी श्वेत है। तिब्बती काले जलवाले सरोवर को 'रुक्ता' और श्वेत जलवाले सरोवर को 'दुरची' नामों से पुकारते हैं।

तिब्बती पुराणों का यह आदेश है कि श्री कैलास की

तेरह परिक्रमा करने वालों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति इस सेर डुङ चुकसुम नामक तालाव पर स्नान करने का अधिकारी नहीं।

कैलास पर्वत के पश्चिम की ओर बहनेवाली ल्हाछू, पूर्व की ओर वहनेवाली भोङछू और मध्य में बहनेवाली तरछेनछू नामक नदियों के तिब्बती धर्म्म-पुस्तकों में केङमा, रेङमा, और उमा या इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाम प्रसिद्ध हैं। ये तीनों नदियां राक्षस सरोवर में गिरती हैं।

ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में कैलास-यात्रा करने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे आत्मरक्षा के लिए बन्दूक आदि कोई शस्त्र तथा जवी घोड़े लेकर जायं।

(२) कैलासान्तर्गत मानसरोवर और उसके यात्री।

गुरुतम आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त पवित्र मानसरोवर चारों दिशाओं में गिरिमाला से आक्रान्त है। जब इसकी उत्तुङ्ग तरङ्गें ऊपर को उठती हैं तो प्रलयकालीन महासागर के समान वह भयावह रूप धारण कर तुमुल आघोष से ध्वनित हो उठता है। यह सरोवर कई प्रकार की क्रीड़ाओं से यात्रियों के हृदय को उल्लसित करता है। कभी तो योगी के समान अत्यन्त प्रशान्त भाव से कैलास योनेरी आदि शिखरों तथा सूर्य चन्द्र नक्षत्रादिकों के लिए दर्पण का काम देता है। कभी मृदुस्मित करता हुआ छोटी २

तरङ्गों से दक्षिण दिशा में स्थित कैलास तथा आकाशस्थित नक्षत्रगणों को धीरे धीरे झुलाता सा प्रतीत होता है। कभी कभी मध्याह्न में अपनी उत्ताल तरङ्गों से ऊर्ध्वस्थित हो कर दिवाकर रश्मियों को विकीर्ण कर निर्मल आभाशाली मौक्तिक का रूप देकर दर्शकों के प्रेमपरिपूर्ण नेत्रों को चुंधिया देता है। कभी बहुभान्ति वर्णों से सुसज्जित मेघावलियों से छेड़खानी करता हुआ उन्हीं विविध वर्णों में प्रतिभासित हो अपने रूप को छिपाता तथा प्रकाशित करता हुआ मेघमालाओं के समान ही अपना रूप भी बना लेता है, तो कभी अकस्मात् रातोंरात स्वच्छ श्वेत निर्मल हिम के रूप में जम कर निष्काम, निश्छल तथा गम्भीर योगमुद्रा धारण किये हुए प्रतीत होता है।

इसकी छटा बड़ी निराली है। देखो, कभी तो राजहंस इसके वक्षःस्थल पर चढ़ कर विलासमयी क्रीड़ा करते हैं और कभी इसके ऊपर हंसदम्पति अपने बच्चों को रख कर गर्व से पंख फैला कर बातचीत करते हैं और इसके मन का भेद लेते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

हिमाच्छादित होने के कारण यहां सभी स्थल श्वेत हो जाने से टीला, मठ, घर, तम्बू आदि सब एक समान हो जाते हैं।

एक तट पर प्रसार के लिए पञ्चवर्णीय रज प्रदान करता

है तो दूसरी ओर पूजा के लिए विविध वर्ण-रञ्जित पाषाणों की छटा प्रदर्शित करता है।

एक तट अति उष्ण है तो दूसरा शीतल। एक कोने में उष्ण स्रोतों से उबलती हुई जल की धारा बहाता है तो दूसरे कोने में उष्ण कुण्डों से उष्ण जल की नहरों को निकाल कर लाता है। एक ओर सोने की निधियां हैं तो दूसरी ओर सुहागे की खान चमकती है।

शीतकाल में छोटी पूंछवाले पर्वतीय मूषकों को कुम्भकर्णी निद्रा में सुला कर पांच, छः मास तक हिम से ढका रहता है। कोई यह न समझे कि मानस खण्ड हरा-भरा उपजाऊ स्थान नहीं, इसलिए अपने एक कोने में बिच्छू बूटी और अजा-निवास के स्थानों पर वास्तुकी (बथुए) को अधिक मात्रा में उत्पन्न करता है।

वाह रे मानसराज, तेरी भी विचित्र लीला है। गडरियों को शीतकाल में एक कोने में बुला कर ग्रीष्मकाल में दूसरे कोने में भेज देता है। कभी २ बड़ी दूर तक विस्तृत सरोवर के तट पर चरती हुई सहस्रों भेड़ों के गल्ले को पंक्तिबद्ध देखने का अद्भुत दृश्य दिखा कर दृष्टि को मुग्ध कर देता है। धन्य है तू! अपने यात्रियों को सभी ऋतुओं में दूध तथा नवनीत प्रचुर मात्रा में प्रदान करता है। किसी नदी से स्वल्प और किसी नदी से अधिक जल ग्रहण करता है। इस प्रकार सब ओर से जल-भण्डार

ग्रहण कर राक्षस तालाब में, वहां से शतद्रु नदी के द्वारा भारत-भू को पवित्र करने में कैलास से निकली हुई इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा के पवित्र जल का मान करने के लिए गंगाछू नामक नद के द्वारा वायव्य कोण में अपने जलातिरेक को रावण ह्रद में डाल कर सांस लेता है।

अब मानस-खण्ड के प्रसिद्ध यात्रियों के सम्बन्ध में दिग्दर्शन कराया जायगा।

पौराणिक गाथा के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि ऋषिराज दत्तात्रेय ने मानसरोवर में स्नान किया था और कैलास, शिव तथा पार्वती के दर्शन कर अपने-आपको कृतकृत्य माना था। कहते हैं कि पुरातन समय से शिव तथा ब्रह्मा ने यहां समाधि लगा कर तप का अनुष्ठान किया था। मरीचि, वशिष्ठ आदि ने यहीं बारह वर्ष पर्यन्त समाधि लगाई थीं।

महाभारत के सभापर्व में यह वर्णन आता है कि अर्जुन दिग्विजय के उपरान्त मानसरोवर के पास पहुंचा। गन्धर्वों के देश पर आधिपत्य प्राप्त कर वहां के राजा की बहुविध धन सम्पत्ति जीत कर लाया था और तभी से अर्जुन का नाम धनञ्जय हुआ, जिसे श्री पाणिनि मुनि ने अलुक् द्वितीया तत्पुरुष समास का निश्चित उदाहरण बना दिया। इससे स्पष्ट है कि पुरातन काल से अनेक ऋषि महर्षि कैलास और

मानस-खण्ड के प्राकृतिक दृश्यों का भली भांति निरीक्षण किया।

१५५३ की घटना विशेष दुःखप्रद है। इसी वर्ष यारकन्द के खान ने अपने जनरल मिर्ज़ा हैदर को ल्हासा के मन्दिर तथा मूर्तियों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए तिब्बत की ओर प्रेषित किया था। मिर्ज़ा हैदर ने लौटते समय मानसरोवर के किनारे पर एक दिन डेरा जमाया।

सुना जाता है, सोलहवीं शताब्दी में अकबर नरेश ने गङ्गोद्गम का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने कुछ दूतों को उधर भेजा, जिन्होंने मानसरोवर की भली भान्ति परिक्रमा की और मानचित्र भी प्रस्तुत किया, जिससे यह स्पष्ट है कि मानसरोवर से सतलज, ब्रह्मपुत्र और करनाली नदियां निकलती हैं।

सन १६२४ में पोर्तुगाल के प्रचारक पुजारी अन्द्रेड थुलिङ मठ के निकट छपरङ नामक स्थान पर ईसाई धर्म का प्रचार करने आये थे। उन्होंने सन १६२६ में तिब्बत में सब से पहले ईसाइयों के गिरजाघर की स्थापना की थी।

कहा जाता है, सत्रहवीं शताब्दी में एक ताशी लामा ने कैलास-यात्रा और मानसरोवर की परिक्रमा की थी। वापिस जाते समय उन्होंने मानसरोवर की चमकीली रेत ले जाकर, उसके द्वारा ताशील्हुन्पो गोम्पा के कलश को अलंकृत किया था।

श्री डे सी डटी रोमन कैथोलिक धर्म के प्रचारक ने १७१५ में लेह से ल्हासा तक प्रस्थान किया। यही सब से पहले पाश्चात्य व्यक्ति हैं जिन्होंने मानसरोवर का सब से पूर्व दर्शन किया। यह गंगा का उद्गम कैलास और मानसरोवर से मानते हैं।

चीन के सम्राट् कङ्ही के निरीक्षण-विभाग में नियुक्त लामा लोग सन १७१३,१४ में मानस-खण्ड की प्राकृतिक छटा का सिंहावलोकन कर गये।

पूर्णगिरि नामक एक ब्राह्मण लार्ड वारेन हेस्टिंग्स की आज्ञा से तिब्बत में गुप्तचर के स्थान पर नियुक्त हुआ। वह १७७० में तिब्बत का निरीक्षण करनेवाले प्रथम अंग्रेज़ महाशय वोगल और टर्नट के साथ तिब्बत जाकर मानसरोवर गया। वहां हुगोल्लो मठ में विराजमान हुआ। इनका विचार है कि गंगा कैलास से निकल कर मानसरोवर में गिर कर फिर बाहिर निकलती है।

सन १७७५ के लगभग पूर्णगिरि नामक वाराणसी के उत्थित-बाहु संन्यासी चीन और बुख़ारे की यात्रा करके मानसरोवर पर लगभग सन १७६२ में आये थे और इन्होंने कतिपय दिनों में मानसरोवर की परिक्रमा समाप्त कर ली थी। उनका विचार है कि गंगा का उद्गम कैलास से, ब्रह्मपुत्र का मानसरोवर से, सतलज का राक्षस-ताल से हुआ है।

तैयार किया। ये सब से पहले पश्चिम देश के महानुभाव हैं; जिन्होंने सीसे डाल २ कर मानसरोवर की गम्भीरता की माप की है।

महाराष्ट्र के श्री स्वामी हंस जी १६०८ में वहां पधारे। वे मानसरोवर के तट पर १२ दिन रहे और कैलास की परिक्रमा करके तीर्थपुरी की ओर प्रस्थित हुए। आपने महाराष्ट्र भाषा में अपना यात्रा सम्बन्धी वर्णन लिखा है। उसमें बतलाया है कि किस प्रकार मानसरोवर पर उन्हें एक अदृष्ट वाणी का अनुभव हुआ और कैसे कैलास पर सिद्ध महात्माओं के दर्शन हुए, इत्यादि बहुविधात्मक मनोरञ्जक वर्णन उन्होंने किया है।

मयूरमुकुटधारी, कटि में शृङ्खला बांधे, लाल कौपीन पहने एक मयूर पंखी नामक स्वामी ने कई बार कैलास और मानसरोवर की यात्रा का आनन्द लूटा है। श्री मयूरपंखी जी ने १६१२ में बारह मास तक खोचारनाथ में निवास किया। १६१३ में कैलास से गेङ्टा गोम्पा मठ के पास रहने की इच्छा से एक छोटी सी कुटी बनाकर वहां निवास किया। यद्यपि इनके पास अन्नवस्त्रादि की प्रचुर मात्रा थी परन्तु वहां के शीतकाल के वेग को सह न सके और परिणामस्वरूप १६१४ के शीतान्त में ऐहलौकिक लीला का संवरण कर परलोकगामी हुए।

१६१५ में परिव्राजकशिरोमणि श्री स्वामी सत्यदेव जी

मिलम के मार्ग से कैलास तक पहुंचे और लीमूलेख के मार्ग से परावृत्त हुए। इन्होंने 'मेरी कैलाश-यात्रा' नामक पुस्तक लिखी है। सम्भव है हिन्दी में कैलाश-यात्रा पर यह एकमात्र पुस्तक हो।

१९२४ में श्री ज्ञानानन्द गिरि महाराज वद्रीनाथ से माना घाट पहुंच कर कैलास और मानसरोवर गये और नीति-होती घाटा होकर वापिस लौटे। श्री स्वामी जी ने केवल कौपीन धारण कर आत्मबल के द्वारा ही यात्रा को सफलता के साथ पूर्ण किया।

सन १९२७ में स्वामी जयेन्द्रपुरी जी मण्डलेश्वर २०, २५ महात्माओं की मण्डली के साथ वद्रीनाथ से मान घाटा होते हुए कैलास और मानसरोवर की ओर प्रस्थित हुए और लीपू घाटा होकर परावृत्त हुए। सम्भव है, मानस-खण्ड की यात्रा करनेवाले यही पहले मण्डलेश्वर हों! उक्त मण्डली के पण्डित-प्रवर धर्म्मदत्त शर्म्मा ने अपनी पुस्तक 'मार्गप्रदीपिका' में मानसरोवर का वड़ा विशद वर्णन किया है। निम्नलिखित उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है:—"कहीं २ नीलकमल का भी दृश्य दृष्टिगोचर होता है।...........दूसरी अद्भुत वात यह है कि किसी किसी दिन को छोड़कर यहां विना वादल हिम वरसा करता है।"

सन १९२९ में कैप्टेन विलसन और अलमोड़े के डिपुटी कमिश्नर रटलेज लीपू घाटी होकर कैलास पहुंचे और नीति

तैयार किया। ये सब से पहले पश्चिम देश के महानुभाव हैं; जिन्होंने सीसे डाल २ कर मानसरोवर की गम्भीरता की माप की है।

महाराष्ट्र के श्री स्वामी हंस जी १६०८ में वहां पधारे। वे मानसरोवर के तट पर १२ दिन रहे और कैलास की परिक्रमा करके तीर्थपुरी की ओर प्रस्थित हुए। आपने महाराष्ट्र भाषा में अपना यात्रा सम्बन्धी वर्णन लिखा है। उसमें बतलाया है कि किस प्रकार मानसरोवर पर उन्हें एक अदृष्ट वाणी का अनुभव हुआ और कैसे कैलास पर सिद्ध महात्माओं के दर्शन हुए, इत्यादि बहुविधात्मक मनोरञ्जक वर्णन उन्होंने किया है।

मयूरमुकुटधारी, कटि में शृङ्खला बांधे, लाल कौपीन पहने एक मयूर पंखी नामक स्वामी ने कई बार कैलास और मानसरोवर की यात्रा का आनन्द लूटा है। श्री मयूरपंखी जी ने १६१२ में बारह मास तक खोचारनाथ में निवास किया। १६१३ में कैलास से गेङ्टा गोम्पा मठ के पास रहने की इच्छा से एक छोटी सी कुटी बनाकर वहां निवास किया। यद्यपि इनके पास अन्नवस्त्रादि की प्रचुर मात्रा थी परन्तु वहां के शीतकाल के वेग को सह न सके और परिणामस्वरूप १६१४ के शीतान्त में ऐहलौकिक लीला का संवरण कर परलोकगामी हुए।

१६१५ में परिव्राजकशिरोमणि श्री स्वामी सत्यदेव जी

मिलम के मार्ग से कैलास तक पहुंचे और लीमूलेख के मार्ग से परावृत्त हुए। इन्होंने 'मेरी कैलाश-यात्रा' नामक पुस्तक लिखी है। सम्भव है हिन्दी में कैलाश-यात्रा पर यह एकमात्र पुस्तक हो।

१९२४ में श्री ज्ञानानन्द गिरि महाराज बद्रीनाथ से माना घाट पहुंच कर कैलास और मानसरोवर गये और नीति-होती घाटा होकर वापिस लौटे। श्री स्वामी जी ने केवल कौपीन धारण कर आत्मबल के द्वारा ही यात्रा को सफलता के साथ पूर्ण किया।

सन १९२७ में स्वामी जयेन्द्रपुरी जी मण्डलेश्वर २०, २५ महात्माओं की मण्डली के साथ बद्रीनाथ से मान घाटा होते हुए कैलास और मानसरोवर की ओर प्रस्थित हुए और लीपू घाटा होकर परावृत्त हुए। सम्भव है, मानस-खण्ड की यात्रा करनेवाले यही पहले मण्डलेश्वर हों! उक्त मण्डली के पण्डित-प्रवर धर्म्मदत्त शर्म्मा ने अपनी पुस्तक 'मार्गप्रदीपिका' में मानसरोवर का बड़ा विशद वर्णन किया है। निम्नलिखित उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है:—"कहीं २ नीलकमल का भी दृश्य दृष्टिगोचर होता है।............दूसरी अद्भुत बात यह है कि किसी किसी दिन को छोड़कर यहां विना बादल हिम बरसा करता है।"

सन १९२९ में कैप्टेन विलसन और अलमोड़े के डिपुटी कमिश्नर रटलेज लीपू घाटी होकर कैलास पहुंचे और नीति

घाटी से वापिस आये। सन १६३० में गङ्टोक के सहायक राजनैतिक एजएट बेकफ़ील्ड राजनीति सम्बन्धी कार्य के लिए मानस-खएड पहुंचे थे। सन १६३१ में लीपू घाटा के मार्ग से मैसूर के महाराजा श्री कृष्णराज वड़ीयर वीर ने बड़े-समारोह से कैलास और मानसरोवर की यात्रा समाप्त की।

सन १६३२ में ऐँफ विलियमसन राजनैतिक एजएट और ऐँफ़ लडलो लीपू लेक होकर कैलास पहुंचे। वहां से गरतोक होते हुए शिमला पहुंचे। ये लोग यात्रा के विचार से नहीं प्रत्युत राजनैतिक ध्येय से गये थे।

सन १६३४ में कलकत्ता के डाक्टर श्यामाप्रशाद मुकर्जी के भाई श्री उमाप्रसाद मुखोपाध्याय कैलास-यात्रा के लिए गये थे। उन्होंने एक फ़िल्म तैयार की जो आध घएटे तक चलकर यात्रा का पूरा २ विवरण देती थी, जिस की एक प्रति आजकल भी कलकत्ता विद्यापीठ में रक्खी हुई है।

सन १६३५ में इटली देश के अद्वितीय संस्कृत पण्डित और बौद्धमतावलम्बी डाक्टर जुसेपे तूची ने ल्हासा के शासकों से प्रवेश के लिए आदेशपत्र लेकर मानसरोवर की यात्रा की थी। इन्होंने इटैलियन भाषा में अपनी यात्रा का विशद वर्णन किया है।

परम पुनीत कैलास के दर्शन के लिए तथा मानस-खएड के भूशास्त्र का अन्वेषण करने के लिए सन १६३६ में स्विट्ज़रलैएड के

आर्नोल्ड हैम और आंगस्ट गेनसर दो महानुभावों ने हिमालय-में गवेषणा करते २ गुप्त रूप से विना किसी आज्ञा के नैपाल में प्रवेश किया, लीपू घाटा पार करके पुरङ्दून में सिद्दिखर मठ में पदार्पण किया। वहां से गेनसर विना आदेशपत्र के राक्षस ताल के पश्चिमी तट पर होते हुए कैलास पर पहुंचे। कैलास तथा मानसरोवर की परिक्रमा करके वापिस लौट गये।

१६३७ में "ओं सत्यम्" नामक युवा ब्रह्मचारी ने तीर्थपुरी में १२ मास वास किया। सन १६३८ की जनवरी में ये मान-सरोवर परिक्रमा के लिए कटिबद्ध हुए। इनकी हार्दिक अभि-लाषा थी कि सरोवर के तट से होकर यात्रा की जाय। मान-सरोवर के ईशान कोण में प्रवाहित होने वाली गुगटा का जल पूर्णतया जमा हुआ न था, हिम पर कुछ दूर तक चलने से वह फट गई और उन्होंने जल में ही देहावसान किया।

सन १६४० में श्री मुकुटविहारीलाल जी दर ऐस० डी० ओ० की धर्म्मपत्नी श्री घनश्यामदास दीक्षित इञ्जीनियर की धर्म्मपत्नी क्रमशः श्रीमती उमा दर तथा श्री रुक्मिणी जी ने अपने पतियों के साथ नौ दिनों में ही मानसरोवर और कैलास की परिक्रमा पूर्ण रूप से समाप्त की। कैलास और मानसरोवर की यात्रा करने वाली देवियों का यह दूसरा मण्डल था।

इस प्रकार अनेक देशी तथा विदेशी यात्रियों ने बड़े पुनीत भाव से कैलास तथा मानसरोवर की परिक्रमा की है। अशान्त

जीवन को शान्तिमय बनाने के लिए यह अनुपम स्थान है। सांसारिक माया बन्धन में लिप्त हुए व्यक्ति संसार में मायामोह-वश किये हुए पापों का निवारण करने के लिए ही ऐसे स्थानों पर जाते हैं। अनेक व्यक्ति कुछ विशेष संकल्पों की सिद्धि की भावना से भी जाते हैं। यदि उनका मनोरथ भाग्यवश पूर्ण हो जाय तो वह इस परिक्रमा के फल का प्रचार करने में कोई कसर नहीं उठा रखते। निष्कर्ष यह है कि स्थान की पुनीतता, भव्यता मनोरंजकता, चारुता तथा लावण्यता में किस को सन्देह हो सकता है ? फिर यात्री अपनी-अपनी भावना के अनुसार उसका यथोचित फल भी प्राप्त कर ही लेते हैं। जो कवि प्रकृति-छटा का निरीक्षण करने गये, वहां उन्हें वह सामग्री मिली कि प्रकृति का जीवित चित्र संसार के सम्मुख उपस्थित कर दिया। वहां जाकर कवि की उत्तुङ्ग भावना-तरङ्ग जिस प्रकार हिलोरें ले सकती हैं, वह नगर तथा अन्य स्थान पर संभव नहीं। जीवन का सच्चा रहस्य यदि पता लगाना हो तो ऐसे शान्तिमय स्थान का ही प्रश्रय लेना पड़ता है। ऐसे शान्तिमय स्थान से वापिस आकर मनुष्य अपने आपको भूला हुआ सा अनुभव करता है। मेरे एक सम्बन्धी की धर्मपत्नी अभी लगभग दो मास हुए यात्रा से वापिस आई है। वह मुझे सुनाती थी कि जिस दिन मैं जालन्धर पहुंची, मुझे मालूम हुआ कि लोग मुझे बहकाते हैं। यह जालन्धर है ही नहीं। मेरी लड़की कान्ता ने कहा—मां, मैं तेरी लड़की

कान्ता हूं। तू मुझे क्यों नहीं पहचानती। मुझे विश्वास न आता था कि सचमुच यह मेरी लड़की है। वह कहती है कि मैं वहां के शान्त जीवन के प्रभाव से इतनी प्रभावित हो चुकी थी कि इस संसार से मैं अपने आपको बहुत कुछ ऊँची समझने लग गई। मानसरोवर के पुनीत दर्शनों के लिए प्रति वर्ष सैकड़ों व्यक्ति जाते हैं। यह है पृथ्वी की विभूति जिसको पाकर वसुन्धरा फूली नहीं समाती।

मातृभक्त नैपोलियन

"पूत के पैर पालने में ही पहचान लिये जाते हैं"—इस कथन के आधार पर नैपोलियन बाल्यावस्था से ही एक धीर तथा साहसी बालक था। घोड़ों पर चढ़ना, लड़ाई करना तथा आक्रमण करने के खेलों के अतिरिक्त उसे और कोई क्रीड़ा प्रिय ही नहीं लगती थी। छत्रपति शिवाजी के समान नैपोलियन भी अपनी माता का अनन्य भक्त था। नैपोलियन ने सेंट हेलना में अपने निकटवर्तियों से कई बार कहा भी था—"जो सद्‌गुण, जो वीरता, जो धर्मप्रीति मुझ में हैं उन सबके लिए मैं अपनी माता का हृदय से आभारी हूं। यदि मेरी माता की सत्-शिक्षा न होती तो मैं मनुष्य नहीं बन सकता था।" वह कई बार अपनी माता के अतुलनीय प्रेम को स्मरण करके अपनी आँखें मूँद लेता, मानों वह अपने हृदय में अपनी माता की प्रतिमूर्ति का आह्वान कर रहा है। "पराई आग में जलना" इसके जीवन का लक्ष्य था। परहितचिन्तक, साहसी नैपोलियन ने एक बार सारा योरुप हिला दिया। बाल्यकाल में आमोद-प्रमोद के लिए नैपोलियन ने एक पीतल की तोप

रक्खी हुई थी। इस का तोल लगभग १५ सेर है। कॉर्सिका में अभी तक नैपोलियन का यह चिन्ह उपलब्ध होता है। अपनी माता की गोद में बैठकर वह प्रायः कॉर्सिका और फ्रांस के युद्ध का समाचार सुनने में कुतूहल प्रकट किया करता था। जब इसकी माता मीठे वचनों से अतीत घटनाएँ सुनाती थी तो वह मुनियों की भान्ति शान्त भाव से सुनकर उन्हें हृदय में अङ्कित कर लेता था।

माता को क्या पता था कि उसकी शिक्षा को महामंत्र की तरह हृदय पर लिखकर वह एक दिन इसी महामंत्र को कठोर रण में परिवर्त्तित करेगा। माता के पास पैसे की कमी को तो नैपोलियन ने कभी अनुभव भी नहीं किया।

एक बार नैपोलियन राजमुकुटों से अलंकृत अमात्यों के साथ सेंट क्लाउड में जा रहा था, अकस्मात् माता से भेंट हुई। वहाँ मातृवात्सल्य से विह्वल होकर नैपोलियन ने मातृ-चरणों पर जो वीरतारूपी सद्भावों के कुसुम चढ़ाये हैं, वह उसकी एक अनुपम भेंट थी।

पांच वर्ष की अवस्था में नैपोलियन ने विद्यालय में पढ़ना आरम्भ किया था। जब नैपोलियन १० वर्ष का हुआ, उसकी माता ने उसे फ्रांस की राजधानी पैरिस में भेज दिया। यद्यपि वह वीर बालक कभी आँसू बहाना नहीं जानता

था, तथापि इस बिदाई के समय उसने माता की प्रेममयी गोद में बैठ बरबस आँसू डाल ही दिये। इटली होकर वह पैरिस पहुँचा।

पैरिस के धनी बालक इस निर्धन बालक से घृणा करने लगे। ब्रायन के विद्यार्थी इसे कार्सिका के वकील का पुत्र कह कर हँसी उड़ाते थे। एक दिन कोपाविष्ट होकर नैपोलियन ने कहा—मेरा वश चला तो इनसे बदला लूंगा और वश रहते इनका अपकार भी करूंगा। इस घटना से कोई तीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर नैपोलियन ने अपने मन का भाव एक बार फिर इन शब्दों में प्रकट किया था—"जब समस्त फ्रांसीसियों ने मुझे उच्च स्वर से राजसिंहासन पर आमन्त्रित किया था, उस समय भी मेरा मूलमंत्र यही था कि प्रतिभा-मार्ग सबके लिए एक समान खुला रहता है, उसमें वंशगौरव कोई वस्तु नहीं।" विक्रमी सम्वत् १८४१ में जब हमारा चरित्रनायक ब्रायन के विद्यालय में पढ़ा करता था, फ्रांस में बहुत जोर की सरदी पड़ी। इस समय नैपोलियन ने प्रतिभा द्वारा एक आमोद का साधन निकाला। अपने सहाध्यायियों को साथ लेकर बर्फ़ का पुल तथा व्यूह बनाया।

नैपोलियन नें विद्यालय के छात्रों को दो दलों में विभक्त किया, एक को दुर्ग की रक्षा के लिए और दूसरे को आक्रमण करने के लिए। कई सप्ताह तक दुर्ग जीतने का अभिनय होता रहा। एक सैनिक बालक ने नैपोलियन की आज्ञा का उल्लंघन

किया तो उसकी ऐसी खबर ली गई कि सारी आयु के लिए उसके माथे पर इस घटना का चिन्ह लग गया।

कॉर्सिका के पतन के उपरान्त पायोली इंगलैण्ड भाग गया था। अन्त में इसे देश जाने की अनुमति मिल गई। यद्यपि पायोली बूढ़ा और नैपोलियन बच्चा था, तथापि दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो गई। पायोली कहा करता था कि "हे नैपोलियन! तुम्हारा समकक्ष मुझे और कोई दिखाई नहीं देता, तुम प्लूटार्क के गिने हुए कतिपय वीरों में एक बढ़े-चढ़े वीर हो।"

नैपोलियन में आत्मगौरव तथा कर्तव्यज्ञान कूट २ कर भरा हुआ था। एक बार आस्ट्रिया के नरेश ने नैपोलियन के सम्मुख अपनी पुत्री के साथ पाणिग्रहण करने का विचार प्रकट किया. नैपोलियन ने बड़ी गम्भीरता के साथ यह शब्द कहे—"इटली के किसी स्वच्छन्द उच्च वंशज भूमिपति का वंशधर होने की अपेक्षा मैं किसी साधु व्यक्ति का वंशधर होना अधिक श्रेष्ठ समझता हूँ।"

नैपोलियन को विलासिता से बहुत ही चिढ़ थी। एक बार उसने वायन के विद्यालय का निरीक्षण किया। धनी बालकों को विलासिता का शिकार पाया। उसी समय उसने देश के शासक मंडल को एक पत्र लिखा—"इन लड़कों को अपने घोड़ों की सेवा आप करनी चाहिए, ऐसे विलासप्रिय कभी युद्ध में वीरता नहीं दिखला सकते।"

उसने कह दिया कि प्रजा का यह पैशाचिक काम बड़ा निन्द-नीय है। मैं इसका साथी नहीं हूं।

एक ओर प्रजा के अत्याचारों से घृणा, दूसरी ओर उनके स्वत्वों से प्रेम तथा राजा के अनुचित कार्यों की स्मृति, इस वहुविधात्मक चिन्ता से नैपोलियन धर्मसंकट में पड़ गया। नैपोलियन ने जेकोबिनों की शक्ति तोड़ने का वीड़ा उठाया। उसने समझ लिया था कि एक ऐसा दृढ़ राजसंगठन करना पड़ेगा, जिससे सर्वथा जय हो। यह सोचकर नैपोलियन ने उच्च नाम-धारियों का पक्ष लिया। प्रजा इतनी बिगड़ चुकी थी कि उसने इस विभ्राट में ३० हजार उत्तम वंशजों को गिलोटिन के मुख में हवन कर दिया। नैपोलियन का यह विचार सर्वथा संगत था कि प्रतिभाशालियों का सर्वनाश हो जाने पर मूर्ख प्रजा कभी राज्य को सुशासित नहीं कर सकती।

जब नैपोलियन कॉर्सिका पहुंचा तो उसने सुना कि फ्रांस में विद्रोही प्रजा के द्वारा राजा और रानी मारे जा चुके हैं। साथ ही पायोली को यह विचारते हुए देखा कि कॉर्सिका द्वीप इंगलैण्ड के अधिकार में दे दिया जाय। पायोली ने नैपोलियन से पूछा तो उसने उसका घोर विरोध किया। इससे इन दोनों की घनिष्ट मित्रता घोर शत्रुता में बदल गई। पायोली के पास से नैपोलि-यन घोड़े पर चढ़ा जा रहा था कि मार्ग में पर्वत पर पायोली के दल ने उसे घेर लिया, किन्तु नैपोलियन उसके हाथों से अपनी

चातुरी द्वारा निकल गया और तब से वह पायोली से सचेत रहने लगा। छुटकारा पाकर नैपोलियन, जातीय दल के नाम से संगठित सेना का नायक बना। इस समय नैपोलियन और पायोली की शत्रुता पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी।

पायोली ने अंग्रेजों को निमन्त्रण दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त पायोली की सेना को साथ ले अजेक्सिया का दुर्ग ले लिया। इधर नैपोलियन को भी पता चल गया था, झट-पट चार-पांच सौ वीरों की सेना लेकर अन्धेरी रात्रि में छोटी-सी नौका पर बैठकर दुर्ग पर घेरा डाल दिया। पांच दिन तक इस छोटी-सी सेना ने वीरता के साथ आत्मरक्षा की। अन्त में बुभुक्षित सेना को लेकर नैपोलियन अपने पोत पर पहुंच गया। नैपोलियन ने इस समय कॉर्सिका छोड़ कर भागने का विचार दृढ़ कर लिया। पायोली ने लेटिशिया से कहा कि तुम कार्सिका में सुख से रहो, किन्तु वीराङ्गना ने कितना सामयिक तथा अनुकूल उत्तर दिया—"सम्मान और कर्तव्यनिष्ठा दो ही पदार्थ हैं जिनके समक्ष मैं सिर झुका सकती हूं।" इस पर पायोली ने शीघ्रातिशीघ्र कॉर्सिका से भाग निकलने का आदेश दिया। माता तथा बहन-भाइयों के साथ नैपोलियन भाग निकला। पीछे से कृपकों की सेना ने शून्य घर को खूब लूटा।

सेना लेकर रोजा नदी के समीप बोरेगलिया में पैर जा जमाया। २१ दिन में सारी फ्रांसीसी सेना युद्धक्षेत्र में जा उतरी। दोनों ओर घोर संग्राम छिड़ गया। नैपोलियन ने युद्धक्षेत्र की रत्ती २ धरती माप रक्खी थी। शत्रु-सेना के भागने को कोई स्थान नहीं था। पीडामोंटीस में लगभग २० हज़ार शत्रु-सेना के पैर उखड़ गये। मई महीना आने से पूर्व ही मेरीटाइम्स, मोंटसेनिस, मोंटटेढ़ी और मोंट फिनिस्टो आदि दुर्गों पर फ्रांसीसी विजय-पताका लहराने लगी। बाहर डुमार्टिन का नाम, सेना में नैपोलियन का नाम वीरता तथा चातुरी में प्रसिद्ध हो गया।

इसी समय नैपोलियन ने मारसेल्स में एक राजकीय बन्दीगृह का जीर्णोद्धार किया। पेरिस में कोलाहल मच गया कि नैपोलियन राजकीय पक्ष लेकर दूसरा कारागार रच रहा है। इस पर अभियोग चला। यद्यपि नैपोलियन निरपराध सिद्ध हुआ, तथापि शासक-मण्डल ने इसको पदच्युत करके पैदल सेना का नायक बना दिया। नैपोलियन इस अपमान को सह न सका और सेना से त्यागपत्र दे दिया। इस समय नैपोलियन का हाथ बड़ा तंग था। पहले भी इसके पास कुछ संचित धन न था। कोई नई नौकरी ढूंढना आरम्भ कर दिया। अन्त में विचार किया कि टर्की में जाकर नौकरी कर लूं। यह इन्हीं विचारों में मग्न था कि इसकी माता का पत्र आया कि मैं बड़ी तंग हूं, कुछ रुपये भेज

दो। इस विपत्ति में इस पत्र का मिलना व्रण पर नमक डालने के समान सिद्ध हुआ। यह निराश होकर नदी के तट पर गया और आत्महत्या करने को तत्पर हो गया। इतने में अकस्मात् इसके एक पुरातन मित्र डिमासिस इसको मिल गये। नैपोलियन ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। डिमासिस धनी था और मित्रों का सच्चा मित्र था। इसने १००० सोने के डालर नैपोलियन को दे दिये। नैपोलियन ने यह धन अपनी माता को भेज कर सच्ची शान्ति प्राप्त की।

नैपोलियन इस धन को लौटाना चाहता था, पर उसे अपने मित्र का कुछ पता न लगा। १५ वर्ष पश्चात् उससे भेंट हुई तो नैपोलियन ने ऋण चुकाना चाहा। मित्र ने कहा—मैंने ऋण के रूप में यह धन नहीं दिया। फिर भी पारि-तोषिक रूप में नैपोलियन ने उसको साठ हज़ार डालर राजकोष से दिलवा दिये और डिमासिस तथा उसके भाई को एक उच्च पद पर आसीन कर दिया।

नैपोलियन के पदच्युत किये जाने के उपरान्त इटली में फ्रांसीसियों की सेना को पराजय पर पराजय प्राप्त होने लगी। कुछ लोगों को सुध आई। रक्षक-समिति के सामने नैपोलियन की पुनः नियुक्ति के लिए प्रश्न उठाया गया। सर्व-सम्मति से निर्धारित हुआ कि नियुक्ति कर दी जाय। नैपोलियन के हृदय में देश के सुधार और सेवा की उग्र चिंता जागृत हो चुकी

थी। जर्जर फ्रांस पर विदेशियों की क्रूर दृष्टि, फ्रांसीसी सेना की पराजय पर पराजय, दूसरी ओर आन्तरिक अराजकता—यह सब उसके लिए अत्यन्त कष्टप्रद था। देश की इस दुर्दशा के समय फ्रांस की राष्ट्रीय परिषद् ने प्रजातन्त्र-संचालन के लिए एक नई व्यवस्था की योजना की। व्यवस्था के निर्माण और परिवर्तन का अधिकार दो सभाओं के हाथ में सुरक्षित रक्खा गया। एक सभा का नाम वृद्ध सभा और दूसरी का नाम पंचशती परिपद् हुआ। वृद्ध सभा में ढाई सौ सदस्यों के रखने का विधान निश्चित हुआ और पंचशती सभा का निर्माण अमेरिका की प्रतिनिधि-सभा के आधार पर हुआ। इसके प्रत्येक सदस्य की आयु ३० वर्ष होना निर्धारित हुआ। प्रजातन्त्र की भावना से ओतप्रोत व्यक्ति शासन-प्रणाली को प्रजातन्त्र के रूप में बदलने का प्रण कर चुके थे, क्योंकि राजकीय संप्रदाय के मुख्य अधिष्ठाता बार्बोन-वंशियों को सिंहासन पर फिर स्थापित करना चाहते थे। दूसरी ओर जेकोबिनों के दारुण अत्याचारों से भी देश की रक्षा करना परमावश्यक हो चुका था। अधिकांश जिलों के निवासियों ने अपने पूर्ण सामर्थ्य से इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

इस समय राजधानी पैरिस ६६ भागों में विभक्त थी। राज्य-शासन-प्रणाली के बदलने का यह प्रस्ताव ४८ भागों ने स्वीकृत किया। अवशिष्ट भागों में ४६ हलके इसके विरोध में

खड़े हो गये। जातीय सभा के प्रजातन्त्रियों ने कहा कि जब बहुमत हमारी ओर है तो निश्चयपूर्वक यह प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत हो जाना चाहिए। इस बात पर प्रतिपक्षियों ने आँखें दिखलाईं और हाथ उठाना चाहा।

साधारण अशिक्षित समुदाय ने, जैसा कि प्राय: सर्वत्र देखा जाता है, बिना समझे जातीय सभा पर आक्षेप करना आरंभ कर दिया। इन अशिक्षितों ने उद्दण्डता का ऐसा बीज बोया कि महानगरी पैरिस की गली गली में अराजकता तथा अशान्ति का ढोल बजने लगा। प्रजाविद्रोह से दिशाएँ आच्छन्न हो गईं। जातीय सभा ने मेनो नामक सेनापति को इसकी शान्ति के लिए नियुक्त किया। मेनो अपने कार्य पर चला तो गया, पर इसमें वीरोचित साहस कहां था! इसके पैर थर्रा गये और वह वहां से भाग निकला। यह समझ कर विद्रोहियों ने क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया और विजय की प्रसन्नता से फूले नहीं समाये।

नैपोलियन ने यह सब दृश्य अपनी आंखों से देखा। रात्रि को ११ बजे जातीय सभा की बैठक बुलाई गई। सभा ने मेनो को पदच्युत करके बारास नामक सेनापति को उसी स्थान पर नियुक्त कर दिया। बारास घबराया, पर उसी समय उसे नैपोलियन की स्मृति हो आई। उसने टूलोन की वीरता को याद कराके नैपोलियन को इस काम पर नियुक्त करने की सम्मति दी। सभा को ठिगने नैपोलियन पर विश्वास न हुआ कि हमारे

काम में सफलता प्राप्त कर सकेगा। बारास के बार-बार कहने पर उन्होंने नैपोलियन को ही सेनापति नियुक्त कर दिया। नैपोलियन ने कार्य को पूर्ण करने के लिए पूरे अधिकारों की मांग उपस्थित की। सभा ने इसको स्वीकार किया। तब नैपोलियन ने सेनापति होकर विद्रोह शान्त करने का बीड़ा उठाया। इसने पैरिस की ५० तोपों को अपने अधिकार में ले लिया। सावलनिस से तोपों का प्रबन्ध करके इसने गोलों की झड़ी लगा दी। समस्त विद्रोही भाग निकले। नगर-निवासियों ने भी अपने २ घरों में पहुंच कर ही ठंडी सास ली। नैपोलियन ने शान्ति स्थापित करने के लिए सब नगरवासियों के शस्त्र छिनवा दिये।

अन्त में समस्त आन्तरिक सेना का सेनापति नैपोलियन हुआ। इसका सम्मान द्विगुणित हो गया। पैरिस के शासन तथा संरक्षण का भार भी इसीके अधिकार में रहा। इस समय नैपोलियन केवल २५ वर्ष का था।

इस पद पर पहुंचते ही इसके सब आर्थिक संकट अस्त हो गये। तब इसने अपनी माता के दर्शन किये और उसके आर्थिक संकटों को काट दिया। इस प्रकार नैपोलियन के घोर संकटमय जीवन की रात्रि का नाश हुआ, भाग्य-रवि का उदय हुआ। यही क्योंकि अब फ्रांसीसी जाति के सम्मान का भाजन बना।

अब तो इसकी विजयपताका आकाश में फहराने लगी। मानतोया की विजय सत्यनिष्ठा का फल था। नैपोलियन की चाहे लोगों ने कुछ निन्दा भी की पर वह तो इस बात पर अटल रहा—"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥"

यह कथन नैपोलियन के आद्योपान्त जीवन में शत-प्रति-शत घटता रहा। मिस्र और केरो विजय करने में कितनी कठिनताओं का सामना करना पड़ा! परन्तु ऐसे साहसी कब अपना पैर पीछे हटाते हैं! इनका पैर तो अंगद के पैर के समान होता है और वचन भीष्म के वचनों के समान। ला मार्टन ने सच कहा था—"नैपोलियन ब्रह्मा की अनुपम आदि सृष्टि है।"

नैपोलियन पैरिस जाकर फिर राजसिंहासन पर बैठा। प्रजा में आनन्द मंगल होने लगा। अब तो महान् साहसी वीर नैपोलियन का झंडा आकाश में लहलहा रहा था। उसकी ओर धर्म-बल और साहस-बल था। इतिहास के लेखक सार्टो ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में इस अद्वितीय वीर का चित्र खींचा है। "यदि नैपोलियन की टोपी और कोट किसी लड़की को पहना दिये जायं तो सारे योरुपीय शासक एक कोने से दूसरे कोने तक युद्ध की तैयारी में रत हो जायँगे।" यह था—नैपोलियन का

योरुप पर महान् आतङ्क। यदि इसी प्रकार किसी और शक्ति को अपनी मान-मर्यादा के लिए लड़ना होता तो उसके नाम का चिन्ह एक दिन में ही नष्ट हो जाता। यह अप्रतिम स्तम्भ इतिहास के संसार में सदा के लिए उन्नत रहेगा। धन्य हैं ऐसे विजयी साहसी !

वरमा का दिग्दर्शन

वरमा हमारे देश के दक्षिण पूर्व में स्थित है। यदि हम आसाम प्रान्त से आगे बढ़ते चले जायं और मनीपुर की पहाड़ियों को पार कर लें तो वरमा का दर्शन कर सकेंगे। यह मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। इधर की पहाड़ियों का मार्ग भयानक जंगलों से आवृत है। अधिक वृष्टि होने के कारण नदियों में अगम्य बाढ़ आती रहती है। इसलिए कलकत्ता से जहाज़ में बैठकर दो तीन दिन की यात्रा के अनन्तर वरमा की रंगून बंदरगाह में उतरना अति सुगम है। वरमा के पश्चिम में बंगाल की खाड़ी है। इसके दक्षिण की ओर मर्तवान की खाड़ी है। वरमा के पूर्व भाग में चीन और स्याम देश हैं। वरमा की रचना बड़ी अद्भुत है। इसकी आकृति एक आयत पूंछवाली चिड़िया के समान है, जिसकी चोंच उत्तर में और पूंछ दक्षिण में है। वरमा देश की भूमि प्रायः ऊबड़-खाबड़ है, इसलिए इसमें सर्वत्र बैलगाड़ी से यात्रा करना अत्यन्त कठिन है। वरमा का क्षेत्रफल २, ६२, ७३२, वर्गमील है। हमारे संयुक्त प्रान्त से दूना है। इसकी जनसंख्या १ करोड़ ५० लाख के लगभग है।

वरमा तीन भागों में विभक्त है—

१. अराकान योमा—इससे सम्बद्ध पहाड़ियाँ बहुत ऊंची

होते समय स्त्री तथा पुरुष इतने सुसज्जित तथा अलंकृत होते हैं कि यह बताना कठिन हो जाता है कि स्त्रियों के कपड़े अधिक मूल्यवान् हैं या पुरुषों के। यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि जितने यह बाहर से स्वच्छ हैं, उतने ही अन्दर से भी। इनके हृदय सुसंस्कारों से निर्मल तथा स्वच्छ हैं।

बरमी लोग वहमी बहुत होते हैं। ये पांच राक्षसों से बहुत डरते हैं। पांच राक्षस ये हैं—१ शेर, २ जंगली सूअर, ३ उड़नेवाला सर्प ४ मनुष्यों को खानेवाली चिड़िया, ५ डरावनी चलनेवाली लौकी। शुक्रवार को सूअर का दिन, शनिवार को अजगर का दिन, और सोमवार को सिंह का दिन समझते हैं।

इन दिनों में जो बालक पैदा होते हैं, उनकी रक्षा के लिए उन्हीं जानवरों की आकृतिवाली मोमबत्तियां बनाकर मन्दिरों में चढ़ाते हैं। फुटबाल, कुश्ती लड़ना, मुष्टि-प्रहार करना, दौड़, घुड़-दौड़ और नावों की दौड़ में अधिक भाग लेते हैं। इनका पहनावा तथा घरों की सुन्दरता इस बात की द्योतक है कि ये शिल्प-विद्या में भी बड़े निपुण होते हैं। विवाह से पूर्व लड़का और लड़की आपस में प्रेम करना प्रारम्भ कर देते हैं; परन्तु प्रेमी और प्रेमिका गुप्त भाव से बातचीत नहीं कर सकते। इन प्रेमियों की बातचीत करने का समय रात को नौ बजे के पश्चात् होता है। प्रेमी अपने

कुछ मित्रों को साथ लेकर अपनी प्रेमिका के घर पर आता है। सीटी मार कर अपने आने की सूचना लड़की को देता है। युवती प्रेमिका भी पहले ही से अपनी दो एक सहेलियों को बुला लेती है। जब घर के सब लोग सो जाते हैं तो प्रेमिका प्रेमी को संकेत करती है, तब ये सब लोग एक कमरे में बैठकर प्रेम का परिचय देते हैं, परन्तु वे एक दूसरे का अंग स्पर्श नहीं कर सकते। इस प्रकार दो चार मिलापों के बाद दोनों की सम्मति से बिना किसी विवाह-संस्कार के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मुख विवाह सम्पन्न हो जाता है।

नगर के अन्दर पुजारी दिन में कई बार भिक्षा मांगते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सूर्यास्त के बाद बाजार की दूकानें बन्द हो जाती हैं। सभी लोग अपने २ स्थानों पर आ जाते हैं।

बरमा पगोडों का देश बतलाया जाता है। सुदूर उत्तर में मिचीना से लेकर रंगून के दक्षिण सिरियम तक ये मन्दिर फैले हुए हैं। रंगून का श्वेडेगन, प्रोम का श्वेटशानड़ा, माण्डले के समीप अराकान, पगान, पीगू और मौलीन के प्राचीन बौद्ध मन्दिर सौन्दर्य से निखरे हुए हैं। पगोडे (बौद्ध मन्दिर) जलाशयों के समीप बनाये जाते हैं। मिंगून के मन्दिर का बड़ा घण्टा ८० टन या लगभग २००० मन का है। बरमा में पगान, सगाई और माण्डले नगरों में पगोडों की संख्या बहुत है।

माण्डले नगर के धार्मिक मन्दिर तथा किला द्रष्टव्य हैं।

यह एक बड़ी विचित्र प्रथा है कि बरमी मन्दिर तो बहुत भव्य बनाते हैं परन्तु अपने निवास-स्थान अच्छे ढंग के नहीं बनाते। माण्डले नगर की सड़कें चौड़ी और आयताकार हैं। इन सड़कों के दोनों ओर सघन हरित छायायुक्त वृक्ष हैं। माण्डले का किला वर्गाकार, दृढ़, बड़ी दीवारों से घिरा हुआ है। प्रत्येक दीवार की लम्बाई सवा मील है। प्राकार के अन्दर राजा का महल और अन्य गृहावली भी है। थीबा राजा के सिंहासन पर जो प्रासाद खड़ा किया गया है, वह अति ही भव्य तथा उन्नत है। बरमी इसे संसार का केन्द्र बतलाते हैं। माण्डले का सर्वोत्तम बौद्ध मन्दिर जलकर भस्मीभूत हो गया है। यहां थीबा राजा के पिता मिडन मीन का बनवाया हुआ 'कुथोड़ा' का मन्दिर है। इसके ऊपर पाली भाषा में बौद्ध धर्म्म के शिला-लेख हैं। माण्डले नगर में बहुत-से मठ हैं जिनमें रानी का स्वर्ण-मठ सब से अधिक शोभाशाली है। माण्डले के दूसरी ओर नदी-पार का दृश्य बड़ा ही मनोरञ्जक है।

माण्डले के निकट दक्षिण दिशा में अमरपुरा नगर है। यह भी किसी समय बरमा की राजधानी रह चुका है। यहां सब से उत्तम मन्दिर 'अराकान पगोडा' है।

आज यहां की स्त्रियां भी पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में रंगी जा रही हैं। वे अपने पुरुषों को आलसी समझती हैं और दूसरे देशवालों से ब्याह करने लगी हैं। पश्चिमी सभ्यता

यहां की प्राचीन सुन्दरता पर पानी फेर रही है। यह देख कर खेद होता है कि यहां की शुद्ध वरमी जाति धीरे २ तिरोहित होती जा रही है। इसके स्थान पर वर्ण-संकर जाति वन रही है।

रंगून वरमा का सव से वड़ा प्रसिद्ध नगर है। यह वरमा की सव से वड़ी वन्दरगाह है। इस नगर से इंग्लैण्ड को सीधे जहाज़ जाते हैं। वन्दरगाह के पास वड़े २ गोदाम हैं, जहां लकड़ी, चावल, तेल आदि का सामान रक्खा जाता है। रंगून में धूप वड़ी कड़ाके की पड़ती है।

रंगून के अंग्रेज़ अफ़सर और दूसरे वावू लोग दफ़्तर में वड़ा काम करते हैं। दफ़्तरों में कुलियों से पंखे खिंचवाकर सुवह से शाम कर देते हैं। सन्ध्या समय टमटम या मोटरों पर अपने घर जाते हैं। दिन भर गर्मी और कड़ी धूप के वाद सन्ध्या समय ठण्डी हवा चलने लगती है।

डलहौज़ी पार्क रंगून का सव से प्रमुख स्थान है। रंगून में जिमखाना या पेगू-क्लव और वोट-क्लव में स्त्री-पुरुष एकत्रित होते हैं। वहां आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करते हैं। सूर्यास्त के कुछ समय पश्चात् सरदी पड़ने लगती है, इसलिए मोटे और गर्म कपड़े पहिनना या शाल-दुशाले ओढ़ना आवश्यक समझा जाता है।

आजकल रंगून कलकत्ते के समान वड़ा विशाल नगर है। यद्यपि यहां सव देश-विदेशों के व्यक्ति विचरते हुए दृष्टिगोचर

होंगे तथापि बरमियों की विशेषता है। बरमियों के विचार प्राय: हिन्दुओं के विचारों से समानता रखते हैं। केवल क्रिश्चियन और मुसलमान बरमी, गो-मांस का उपयोग करते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बी हिन्दू मतानुयायी व्यक्ति केवल सूअर तथा मुर्गे आदि के मांस को बड़े चाव से खाते हैं। आजकल मद्रासियों ने माण्डले में बहुत-सी भूमि लीज़ (Lease) पर ले लेकर वहां अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। यहां के रहनेवाले बरमी व्यापार-निपुण नहीं। क्योंकि सत्य-भाषण को वे अपने जीवन का एक अंग बना चुके हैं, व्यापार और राजनीति में असत्यता का अंश छिपा रहता है। भारतीय तथा अन्य विदेशी व्यवहार में परम निपुण हैं। बरमियों को जापान के युद्ध में जितना आर्थिक संकट उठाना पड़ा, वह क्षति कभी भी पूर्ण नहीं हो सकती।

यद्यपि इस समय बरमा भी स्वतन्त्र देशों में से एक है, परन्तु पारस्परिक वैमनस्य इतना बढ़ चुका है कि शान्ति-किरण दृष्टि से तिरोहित हुई-सी प्रतीत होती है। आपस की इस विद्वेषाग्नि ने जो अशान्ति का साम्राज्य फैलाया हुआ है, वह जीवन को शान्तिमय नहीं होने देता। क्रेन जाति ने जो बीज बोया है न जाने भविष्य में उसका क्या फल होगा!

यहां पूंगी (मन्दिर के पूजक) केवल एक बार भोजन करते हैं और वह भी बड़ा हलका। इनका सिद्धान्त है कि

काम, क्रोध और लोभ इन तीनों पर विजय प्राप्त करने से मोह और अहंकार पर स्वयं विजय हो जायगी। इनका सिद्धान्त वहुत अंश तक ठीक भी मालूम होता है। यह है बरमा का दिग्दर्शन। आशा है आप इसके आधार पर बरमा की यात्रा कर चुके होंगे। अब इसके चिड़िया-घर का वर्णन करके आप को एक झपकी में घर ले जाएंगे।

यह स्थान कृषि-उद्यान (Agri-horticultural society) के उपवन से लगा हुआ है। बीच में केवल एक छोटी-सी भित्ति है। ये दोनों स्थान नगर से कुछ दूर मैदान में स्थित हैं। एक ओर प्रविष्ट होते ही भिन्न २ प्रकार की चिड़ियां मिलती हैं। जावा के पेरेकीट और सुग्गा का निवास-स्थान जावा, सुमात्रा और वोर्नियो है। नील मुकुट लटकनेवाले सुरंग का स्थान मलक्का है। इसका कण्ठ लाल, पूंछ हरी और सिर नीला होता है। यहां लाल चोंच और नीले शरीर वाले पपीहे (Magpie) भी अपनी छटा दिखलाते हैं। यहां गन्धक के समान पीली छातीवाली टोकान भी देखने योग्य है। खेद है कि इसे अपनी जन्म-भूमि मैक्सिको को छोड़ यहां बन्दी होना पड़ा। इसको भोजन के लिए पाव रोटी मिलती है। आस्ट्रेलिया से लाई हुई अनेक प्रकार की चिड़ियां हैं। पनेन्सर पेरे कीट को भोजन के लिए मूंगफली दी जाती है। वेचारे रोजेला पेरे कीट को कोदों पर निर्वाह करना पड़ता है। लाल पेरे कीट का आदर गेहूँ, मकई और

चनों से किया जाता है। लाल और नीली मैना को आम, गेहूं, जौ, चने और मूंगफली का भोजन दिया जाता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक जीव को उसकी रुचि के अनुसार भोजन दिया जाता है। न्यूगिनी के कलग़ीदार कबूतरों को गेहूं, चना और मकई खाने के लिए दी जाती है। यहां के नरी द्वीप की काली और सफ़ेद तेलिन, जावा का वया, कितने भले प्रतीत होते हैं। बन-बिलाव तो अपनी कोठरी में चौकड़ी भरे बैठा रहता है। खाने के लिए यहां भी उसे अंडा और केला स्वाभाविक भोजन मिल जाता है। इस पंक्ति में अंडमान का सूअर, चीता, सिंह, बघेला और बेअरकैट अपना अपना भीषण शब्द करते दिखाई देते हैं। कंगारू का बच्चा घास चरता हुआ क्या भला प्रतीत होता है! चने और मकई भी उसके खाने के लिए उसके समीप पड़े रहते हैं। मलय द्वीप की काली गिलहरी भी चना, भात और केला खाती हुई अच्छी लगती है।

बरमा, मलय द्वीप, जावा और सुमात्रा द्वीप में रहनेवाली सेही की पूंछ कितनी सुन्दर प्रतीत होती है! कोचीन और ट्रावनकोर के बन्दर की पूंछ केसरी की पूंछ के समान है। ज़रा देखिए, बिसन भैंस के समान आकृतिवाला है! इसके पैर श्वेत, शृंग पतले और मुड़े हुए हैं।

ईमू की ओर भी दृष्टि दौड़ाइए। इसकी गरदन ऊंची और

लम्बी है। पैर कम मुड़ते हैं। बाल रेशम के समान कोमल हैं। अहा! कैसे चोंच से पीठ खुजला रहा है, देखो चोंच में किस प्रकार पानी भर कर लाता है और गटक कर जाता है। वाह भई वाह! केले, दाने और घास को कितने चाव से खा रहा है। बस, अब ईमू को देखकर आपको अपने स्थान पर वापिस ले चलें। आंखें बन्द करो, एक, दो, तीन। लो आप बरमा का दिग्दर्शन कर और उसके अद्भुत चिड़ियाघर में भ्रमण कर अपने स्थान पर आ बैठे। यह है एक विचित्र यात्रा, जो घर बैठे कर ली। कुछ व्यय भी नहीं हुआ और देख भी सब कुछ लिया।

लन्दन और पैरिस के आवश्यक स्थानों की मानसिक परिक्रमा

मेसन हाउस

यह एक पत्थर का बना हुआ असाधारण विशाल भवन है। इसकी भित्तियों पर इंग्लैण्ड की ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी २ मूर्तियां देख सकते हैं। देखो, फ़िनिशियन लोग नग्न ब्रिटिश जनों को वस्त्रदान कर रहे हैं। सम्राट् चार्ल्स प्रथम को पार्लमैण्ट के सैनिक क्रामवेल के आदेश से पकड़ रहे हैं। किंग जॉन अपने प्रधान नायकों को प्रसिद्ध मैग्नाकार्टा वितरण कर रहे हैं। रानी एलिज़ाबेथ की सवारी की ओर भी दृष्टिपात कीजिए, कितनी दर्शनीय प्रतीत होती है। देखो, अब के बने हुए नये चित्र दीख रहे हैं, जिनमें नरेशाधीश जार्ज पंचम, और प्रिंस ऑफ़ वेल्स जनरल हेग के साथ फ्रांस के एक टीले पर खड़े महायुद्ध की बजती हुई दुन्दुभि को देख रहे हैं।

वेस्ट मिनिस्टर

इस गिरजे की आधार-शिला सम्राट् नार्मन विलियम रूफ्स ने १०९७ में अपने हाथों से रक्खी थी। इसका इंग्लैण्ड के इतिहास से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहीं वह सिंहासन है

जिस पर एक शिला रक्खी गई है, जो पैलस्टाइन से स्काटलैंड में लाई गई थी। फिर स्काटलैण्ड से इंग्लैण्ड लाई गई। इंग्लैण्ड के नार्मन कुल के, स्टुआर्ट वंश के और हनोअर वंश के सभी नरेशों की समाधियां यहीं विद्यमान हैं। बड़े २ राजनीतिज्ञ, बड़े २ कवि यहीं प्रकाण्ड घोर निद्रा में अनन्त काल के लिए सो रहे हैं। जिन प्रतापी राजाओं ने इंग्लैण्ड के इतिहास के मुख को समुज्ज्वल किया वह इसी परिमित भूमि में हैं। यह सब देखकर अब आगे चलिए—

देखो, द्वारों के दोनों ओर मीनारें हैं। एक मीनार को क्लॉकटॉवर (Clock-tower) कहते हैं, इसमें घण्टे वाली सुई लगभग ९ फ़ीट की और मिनट वाली १४ फ़ीट की है। इसका समय बतलाने वाला घड़ियाल १३॥ टन भारी है। देखो, छत की ओर इस पर कितनी बारीक जाली बिछी हुई है। इस इमारत को देखकर तुम कहीं आश्चर्य से विमुग्ध तो नहीं हो गये। हमारे भारत में क्यों भई! क्या इससे कुछ कम भव्य स्थान हैं। अजन्ता और एलोरा की गुफाएं, जगन्नाथ और रामेश्वर आदि के विशाल मन्दिर, उदयपुर और जयपुर के राजपूत राजाओं के राजमहल, आगरे का ताजमहल, इन्हें देखकर तो यहां के रहनेवाले भी विस्मित हो उठते हैं। ताज के समान दूसरा भव्य स्थान लन्दन में तो क्या योरुप भर में नहीं है।

बकिंघम प्रासाद

यह एक पाषाण-निर्मित विस्तृत तथा लोहे के जंगले से घिरा हुआ प्रासाद है। समीप ही महारानी विक्टोरिया की संगमरमर की बनी हुई मूर्ति है। फाटक पर पुरानी सैनिक वेषभूषा से सुसज्जित सैनिकों की पंक्ति है। बहुत-सी दिगम्बरा नारियों की मूर्तियां कितनी शोभायुक्त प्रतीत होती हैं। देखो, महल के फाटक पर एक छोटा-सा मण्डप दृष्टिगोचर हो रहा है, जहां सम्राट् अपने सैनिक वीर नायकों के साथ वार्तालाप करते हुए दिखाई दे रहे हैं। चलो, ऊपर चलें, आपको कुछ और दिखलाएंगे। देखो, इस चित्र में कुछ बेढंगे याचक किस प्रकार निष्कपट वनिताओं को ठगने का प्रपंच रच रहे हैं। वाह, भारतीय भूपतियों का भी क्या ही विचित्र चित्र है। अच्छी इनकी दुर्दशा दिखलाई है। यह है बकिंघम प्रासाद।

ब्रिटिश म्यूज़ियम और पुस्तकालय

यहां म्यूज़ियम (प्रदर्शनालय) में बहुत से सम्राटों की प्रतिकृतियां विराज रही हैं। मूर्तियां कितनी बढ़िया हैं। ये चार सौ ईस्वी की बनी हुई प्रतीत होती हैं।

सम्राट् हेड्रियान, एन्टोनियस और नेरो की तो पूर्ण प्रतिकृतियां बनी हुई हैं। ज्यूलियस सीज़र और आगस्टस् सीज़र की अर्धमूर्तियां भी कुछ कम शोभा का आगार नहीं।

श्वेत पाषाण-निर्मित मिनर्वा देवी की मूर्त्ति कृष्ण मुकुट धारण किये हुए क्या ही निराली छटा दे रही है ! सिकन्दर की अर्ध-मूर्ति तो बहुत ही प्राचीन प्रतीत होती है। ऐसा जान पड़ता है कि यह ईसा की छठी शताब्दी से पहले की बनी हुई है। डायना देवी के टूटे हुए मन्दिर के मरमर-पाषाण-खण्ड क्या ही भले प्रतीत होते हैं। यह पाषाण-खण्ड प्राचीन काल की झलक दे रहे हैं। प्राचीन रथों के चित्र बड़े निराले ढंग के बने हुए हैं। इनको देखकर हम अपने-आपको प्राचीन सभ्यता के प्रदेश में विचरते हुए अनुभव करते हैं। पुस्तकालय क्या ही विशाल है ! चारों ओर पुस्तकों का ही राज्य छाया हुआ है। इतना बड़ा पुस्तकालय पहले कभी देखने में नहीं आया। चारों ओर पुस्तकों की द्युति से अलमारियां जगमगा रही हैं। इस पुस्तकालय में लगभग ५० लाख पुस्तकें हैं।

अब आपको लन्दन से पैरिस की ओर ले जायंगे। चलिए जरा त्वरा से कल्पना के पग आगे बढ़ाइए, अभी आप पहुंच जाते हैं पैरिस में। लो पहुंचे न ! यह है—

पैरिस राजमहल ट्यूलरी या लूवर

यह राजमहल फ्रांस-नरेशों का प्रमुख निवास-स्थान है। फ्रांसीसियों का विचार है कि सब नरेशों के प्रासादों से यह

प्रासाद अधिक विशाल है। यह विशाल तथा बड़ा आयत है। यह पाषाण तथा सीमेंट का बना हुआ है। इस प्रासाद के निरीक्षण से हम भूतपूर्व फ्रेंच-नरेशों के प्रताप, ऐश्वर्य तथा गौरव का अनुमान भली-भान्ति लगा सकते हैं। इसमें अनन्य सदृश अलंकार पूर्णतया संगत है। यह कहना उचित ही होगा कि इसकी रचना इस-जैसी ही है।

पूर्व से पश्चिम तक द्रौपदी-चीर के समान बाहु फैलाये हुए लम्बा चला गया है। उत्तर-दिशारूपी बाहु पर 'रिउरिबोली' नामक सड़क है, जिसकी एक ओर बड़ी विशाल तथा भव्य दूकानें हैं। दक्षिणवाली बाहु ठीक नदी के तट हैं। बीच का रिक्त स्थान विजय द्वारा संचित मूर्तियों से सुसज्जित है। इसी से सम्बद्ध एक बड़ा उपवन है जो पैलेस कंकाई तक चला गया है। इस प्रासाद का ऐतिहासिक सम्बन्ध बड़ा गहरा है। इसी प्रासाद में फ्रांस के नरेश १६वें लुई को प्रजा ने बन्दी किया था। इसी प्रासाद के विशाल प्रकोष्ठ में बैठकर प्रजा-प्रतिनिधियों ने उसके लिए मृत्यु-दण्ड उद्घोषित किया था। इस प्रासाद के प्रकोष्ठ अतीत के नृत्य, वाद्य, आमोद-प्रमोद तथा विलासिता की बहती हुई नदी का परिचय देते हैं। क्या अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि इसी स्थान पर चन्द्रमा की छटा को लज्जित करनेवाली देवियों से घिरे बोरबन-नरेश आनन्द तथा विलासिता की तरङ्गिणी में

मज्जनोन्मज्जन करते रहे होंगे ? यही महल रक्तपिपासु, समता-कांती, देशभक्त मुराट्, राब्स पीरी, डेन्सर आदि की लीला-भूमि भी रहा होगा। फ्रांस के भीषण सम्मेलनों का भी यही स्थान रहा होगा।

विशेष न्यायालय

यह फ्रांस का असाधारण न्यायालय 'पैलेस टु जस्टिस' है। इसमें प्राचीन ढंग के मुकुट तथा वस्त्रों से सुसज्जित नरपति सेंट लुई और उनकी माता की मूर्ति सुशोभित है। ऊपर चलिए, देखो, यह वर्तुलाकार प्रकोष्ठ है। यहां फ्रांस के प्रसिद्ध न्याया-धीशों के चित्र लटक रहे हैं।

आइए, आगे देखिए, यह चौकोर प्रकोष्ठ है। पथ-प्रदर्शकों ने बतलाया है कि यह न्यायालय प्रधान न्यायाधीश का है। न्यायाधीश का आसन तथा काष्ठ-पीठिका इतनी सुसज्जित तथा इतनी सुनिर्मित है कि आंखें ठहर नहीं सकतीं। यह तो है सो है, देखिए अभियुक्तों तथा प्राड्विवाकों के खड़े होने का स्थान भी आंखों को चुन्धिया रहा है। क्यों भई! अनुमान तो लगाओ, मेरे विचार में इस कमरे का सामान १० लाख फ्रेंक से कम लागत का न होगा। देखो योरुपियन प्रणाली के अनुसार इसकी छत में लकड़ी का कितना बढ़िया काम किया हुआ है, जिसपर सुनहरी वर्ण सुशोभित है। देखिए, लम्बे दालान की

और बैरिस्टर लोग गौन पहने उपनेत्र लगाये हुए किस प्रकार अनूठे ढंग से टहल रहे हैं। यहां तो कुछ बैरिस्टर स्त्रियां भी दिखाई पड़ रही हैं। यह फ्रांस का प्रधान न्यायालय है, किन्तु कुछ भीड़-भाड़ नहीं। हमारे देश के न्यायालयों तथा इन न्यायालयों में आकाश-पाताल का अन्तर है। हमारे देश के दीवानी, फ़ौजदारी न्यायालयों में इस प्रकार भीड़ लगी रहती है जैसे कुम्भ के मेले पर यात्री गंगा-माई के दर्शन करने आये हों। हमारे यहां तो सब स्थानों पर ठट्ठ का ठट्ठ जुड़ा रहता है। न्यायालय के अन्दर वकील बैरिस्टरों का ठट्ठ, अभियुक्तों तथा दर्शकों की भीड़, बाहर मैदान में प्रार्थनापत्र लिखने तथा लिखानेवालों की भीड़। यहां का न्यायालय मौन-भाव परिपूर्ण, मुनियों के न्यायालय के समान शान्त और सभ्यतापूर्ण दृष्टिगोचर होता है। आओ, अब कल्पनाश्व पर आरूढ़ होकर यूनिवर्सिटी की ओर चलें। यह है—

फ्रेंच यूनिवर्सिटी

यही विश्वविद्यालय देश में ज्ञान, कला तथा विद्या आदि के प्रचार का केन्द्र है। यहां की शिक्षा का महत्व बड़ा ऊंचा है। यहां प्रत्येक विद्यार्थी के लिए नीति जानना अनिवार्य है। प्रत्येक कूचे, गली, मुहल्ले में छोटे-छोटे बच्चे प्रमुदित पक्षियों के समान चहचहाते सुनाई दे रहे हैं। देखिए, यहां क्रीडनकों से ही शिक्षा

का आरम्भ होता है। कितनी अच्छी प्रणाली है। गवेषणात्मक कार्य के लिए किसी विद्या में पराकाष्ठा तक पहुंचनेवाले छात्र इस यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट होते हैं। कई एकड़ भूमि पर यह विशाल विद्यापीठ स्थित है। यह फ्रांसीसी प्रथा के अनुसार ऊंचे और बड़े-बड़े विशाल स्तम्भों से सुसज्जित है। देखो, सीढ़ियों के सामने कितना बड़ा विशाल फाटक है। अरे यहां तो फ्रांस के अपूर्व विद्वान् इतिहास-शास्त्रज्ञ विक्टर ह्यूगो, दूसरी ओर कुत्ता काटने की चिकित्सा के आविष्कारक डाक्टर पाश्चर की प्रतिकृतियां सुशोभित हो रही हैं। यहां के दालान की भित्ति पर कितने चित्ताह्लादक चित्र सुसज्जित हो रहे हैं। एक चित्र तो उस समय का प्रतीत होता है जब कि देश की शिक्षा प्रचारकों के हाथ में ही थी। दूसरे चित्र में प्राचीन ढंग के वस्त्र पहने हुए आगे-आगे परीक्षोत्तीर्ण छात्र, बड़े समारोह के साथ नगर में परिक्रमा लगा रहे हैं। पीछे-पीछे प्रचारक मण्डलियां भी जा रही हैं। समस्त जनता इनको आदर की दृष्टि से देख रही है और हृदय से आशीर्वाद दे रही है। यहां तो सब ही प्रकोष्ठ वर्तुलाकार हैं। लकड़ी के आसन बने हुए हैं। अध्यापकों के लिए अच्छी बड़ी मेज लगी हुई है। विज्ञान, इतिहास और गान विद्या की अनेक श्रेणियां हैं। आगे चलकर यह बड़ा गोल कमरा है जिसे अंग्रेजी में (Hall) 'हाल' कहते हैं, जिसमें अनेक विदेशी विद्वान् अपने गवेषणापूर्ण कार्य

छात्रों के मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं।

यह है विद्यालय का सर्वप्रधान प्रकोष्ठ। यहां फ्रांस के प्रेज़ीडेण्ट देश के प्रतिभाशाली छात्रों को फ्रांस की सर्वोत्कृष्ट पदवी वितरण करते हैं। यह कमरा लकड़ी का बना हुआ है तथा आसनादि विविध प्रकार की सामग्री से अलंकृत है। ऊपर देखो, छत पर एक चित्ताकर्षक चित्र भी दीख रहा है।

इस पर एक विद्वान् बैठा हुआ पुस्तक का अध्ययन कर रहा है। पास ही कितनी लावण्योद्भासित रमणियां खड़ी हुई अठखेलियां कर रही हैं। विद्वान् दृढ़तापूर्वक स्वाध्याय में संलग्न है। वह विद्यार्थियों के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करता है कि सुख त्यागकर और चित्त को एकाग्र करके ही मनुष्य सच्चे अर्थों में विद्वान् बन सकता है। हमें इस चित्र को देखकर तो वसिष्ठ, कणाद आदि ऋषियों की स्मृति हो आती है। इस चित्र को देखकर साक्षात् तपस्यालीन महादेव का चित्र आंखों के सामने खिंच-सा जाता है।

इस कमरे में तीन उच्च कोटि के विद्वानों के विशाल चित्र सुशोभित हैं। इनको देखकर विद्यार्थियों का उत्साह द्विगुणित हो जाता है। इनमें पहला चित्र फ्रांस के श्रेष्ठ प्रदीप्यमान कविवर 'कारनेई' का है। दूसरा विख्यात नाटक-कर्ता 'मोलियर' का है। तीसरा चित्र मातृभाषा को उच्च गौरवासन पर बिठलाने

वाले, देश के मान को बढ़ानेवाले, विद्या-बुद्धि-सम्पन्न देशों में फ्रांस के मुकुट को दमकानेवाले 'रासीन" का है'। यह है इस विद्यापीठ की अतुल शोभा। आओ, अब कल्पना-युग से बाहर चल कर इस यात्रा को सफल बनायें।

समुद्र-यात्री आदि जातियां

लगभग सहस्रों वर्ष हुए होंगे जबकि संसार में जलपोतों का आरम्भ हुआ होगा। युग के प्रारम्भ में मनुष्य मशक के समान चर्म के साधन बनाकर जल में तैरने लगा होगा। जब से हम मिस्र और सुमेरिया से परिचित हुए हैं, तभी से हम टोकरी के समान चमड़े से घिरी हुई नौका का उपयोग करते चले आये हैं। इससे भी पूर्व अति प्राचीन भारत में छोटी-बड़ी नौकाओं का उपयोग होता रहा है।

आयरलैण्ड और वेल्स में आज तक भी ऐसी नाव देखने को मिलती हैं। अलास्का में अब भी चर्म से बनी हुई नौकाओं द्वारा बहिरंग समुद्र को पार करते हैं। ज्यों-ज्यों संसार में शस्त्रों की उन्नति होती गई त्यों-त्यों लट्ठों को खोखला कर उनसे नाव का काम लिया जाने लगा। इस प्रकार नाव की जन्म-कथा का पता चलता है। जल-प्रलय की कथा में मनु की नौका अथवा 'नूर की किश्ती' का वर्णन आता है। सम्भव है वह कथा किसी

प्राचीन पोत-निर्माता की स्मृति को अपने गर्भ में छिपाये हो पिरामिडो को आदि जहाज़ का संकेत नहीं माना जा सकता। संभव है कि पिरामिडो के निर्माण से पूर्व ही समुद्र में जहाज़ चलने आरम्भ हो गये हों। ई० पू० ७००० से पूर्व ही भूमध्य सागर तथा फ़ारस की खाड़ी में इनका उपयोग किया जाता था। इनमें मत्स्याकार जलयानों की संख्या अधिक थी। कुछ डाकू तथा व्यापारियों के जहाज़ भी होते थे। मानव प्रकृति का निरीक्षण करते हुए हम निश्चिन्तता से कह सकते हैं कि ये प्राचीन नाविक अवसर मिलने पर डाका डालते थे और विवश होने पर इन्हें व्यापार करना पड़ता था।

प्रारम्भिक जहाज़ अन्तरस्थ समुद्रों में चला करते थे, जहां वायु की प्रगति अनियमित रूप से होती थी। कई दिनों तक समुद्र शान्त भी बना रहता था। इन पोतों से साधारण सहायता ही मिल सकती थी। पर ये विशेष उपयोगी न हो सके। खुले समुद्रों में विचरनेवाले, रस्सी से दृढ़तापूर्वक बँधे हुए पालदार पोतों की उत्पत्ति लगभग ४०० वर्षों से ही मानी जाती है। ये प्राचीन काल के पोत तो केवल डाँडों से चलाये जाते थे, ये समुद्र-तट के निकट ही चल सकते थे। वायु के प्रचण्ड प्रकोप को सहन करना इनके लिए कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव था। परिणाम-स्वरूप बड़ी-बड़ी विशाल तलीवाले, विशालकाय जलयान बनने आरम्भ हुए। डाँड द्वारा चलाने

के लिए भी दासों की माँग आरम्भ हुई, जिसके साथ-साथ युद्ध-वन्दियों की माँग भी आरम्भ होने लगी।

अरब और सीरिया में भ्रमण करनेवाली सैमेटिक जातियां प्रथम अक्कादी और तत्पश्चात् वाबुल में साम्राज्य स्थापित कर चुकी थीं। पश्चिम में ये ही सैमेटिक जातियां समुद्रगामी होती जा रही थीं। इन्होंने भूमध्यसागर के पूर्वीतट पर वन्दरगाहों की एक शृंखला-सी स्थापित कर दी थी, जिनमें 'टायिर' और 'सिडनी' मुख्य थे। वावुल में हम्मुरबी के शासन-काल तक ये लोग व्यापारियों, भ्रमण-व्यवसायियों, और उपनिवेश-संस्थापकों के रूप में भूमध्य सागर के इधर-उधर फैल गये। ये समुद्रगामी सैमेटिक लोग फ़िनिशियन कहलाते थे। ये स्पेन में बिखर गये थे और इन्होंने आईबीरियन वास्क लोगों को समुद्र तीर से दूर भगाकर प्रायद्वीप में बसा दिया था। वे जिब्राल्टर की जलग्रीवा के आधार पर सागर के किनारे-किनारे अपने जलपोतों को चलाया करते थे। इन्होंने ही अफ्रीका के उत्तरी तट पर उपनिवेश स्थापित किये। इनमें फ़िनिशियन लोगों को बसाया।

यह नहीं कहा जा सकता कि भूमध्य सागर में चपटी तली के आकारवाले एक खण्ड के जलपोतों को सबसे पहले फ़िनिशियनों ने ही चलाया। उनकी उन्नति से बहुत पूर्व इस समुद्र के तटों और द्वीपों में बहुविध छोटे-बड़े नगर विद्यमान थे, जिनको उन जातियों ने बसाया था जो बाह्य रूप से

पश्चिम के बास्क और दक्षिण के बर्बर और मिस्रवासियों के रुधिर तथा भाषा से गहरा सम्पर्क रखती थीं। इन जातियों को 'इजियन' नाम से पुकारा जाता था। इस प्रकार जलयात्री बढ़ते चले गये। यहां तक कि प्रत्येक देश के रहनेवाले जलयात्रा करने लगे। जिस-जिस देश पर दृष्टिपात करें वहीं जलयात्री मिल जायँगे। जलयात्रा केवल दूसरे देशों पर आक्रमण करने, तथा विदेशी व्यापार के लिए ही नहीं, प्रत्युत विद्याध्ययन के लिए भी की जाती है। कई व्यक्ति केवल भिन्न-भिन्न देशों की प्रथा तथा सामाजिक रीति, व्यवसाय आदि को देखने के लिए जलयात्रा करते हैं। कई अपने सर्वसाधारण ज्ञान को बढ़ाने एवं धार्मिक प्रचार करने के लिए करते हैं।

समाप्त

सिकन्दरिया के पुस्तकालय और अजायबघर का दिग्दर्शन

सिकन्दर ने अरस्तू की गवेषणाओं को उनके अपने वास्तविक रूप में सुरक्षित करने के लिए प्रचुर सम्पत्ति से सहायता की थी। म्यूज़ेज़ नाम से प्रसिद्ध यूनान की विद्या की नौ अधिष्ठात्री देवियों को प्रसन्न करने के लिए इसने एलेग्ज़ेंड्रिया में एक म्यूज़ियम (विद्यामन्दिर) बनवा कर उन्हीं के नाम पर प्रसन्नतापूर्वक समर्पण कर दिया। दो तीन शताब्दी तक विज्ञान-सम्बन्धी कार्य बड़े परिश्रम से किये गये।

ज्यामिति-शास्त्र के निर्माता 'यूक्लिड', पृथ्वी की आकृति का निर्णय करनेवाले एटाटौस्थमिज, शंकुगणित (Conic Section) पर विशालकाय ग्रन्थ लिखनेवाले ऐपोलोनियस, नक्षत्रों की सर्वप्रथम मानसूची बनानेवाले हिपारकस आदि विज्ञान-वेत्ताओं ने अपने नये-नये आविष्कारों से संसार को मुग्ध कर दिया। विख्यात वैज्ञानिक आर्किमिडीज भी इसी विद्यालय का चतुर छात्र था।

सम्राट् टौलमी प्रथम और द्वितीय के काल में विज्ञान की धारा आकाश तक तरङ्गित होने लग गई थी। परन्तु विज्ञान-सम्बन्धी इस परिश्रमधारा ने संसार में अपना तीव्र वेग नहीं दिखलाया।

अरस्तू का अन्तेवासी सम्राट् टौलमी प्रथम जब तक फरोहा रहा, तब तक इस काम में कोई त्रुटि नहीं आई। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् मिस्रदेशीय भाव घुस जाने से टौलमी राजवंश के व्यक्तियों की विचारधारा पुजारियों की प्रेरणा से धार्मिक कृत्यों में बढ़ती चली गई। विद्यालय के कार्यों में रुचि कम होती गई। कहावत है कि एक ओर प्रवृत्ति होने पर दूसरी ओर से निवृत्ति हो ही जाती है। पहले एक सदी में जो कुछ कार्य हुआ, उसकी अपेक्षा शतांश भी कार्य अनन्तर आनेवाली अनेक शताब्दियों में भी न हो सका। टौलमी ने एलेग्ज़ेंड्रिया के पुस्तकालय में निखिल विश्वज्ञान भरने की चेष्टा की थी।

पश्चात् अंधकार के मेघ चहुँ ओर छा गये और अरस्तू का बोया हुआ बीज योंही अंधकार के गर्त में पड़ा रहा। अब कुछ ही सदियों में वह ज्ञानाङ्कुर फलों से लदे हुए वृक्ष के रूप में परिणत हो गया है, जिससे आरम्भिक काल के छोटे अंकुर का अनुमान लगाना भी दूभर हो गया है।

यह न समझिए कि ईसा से पूर्व तृतीय शताब्दी में यूनानियों के मानसिक विकास का केन्द्र केवल सिकन्दरिया ही था। मानसिक उन्नति के विकास का जगमगाता प्रदीप साम्राज्य के अनेक नगरों में अपनी ज्योति का सन्देश पहुँचा चुका था।

सिसली के साइराक्यूज नामक यूनानी नगर में दो शताब्दी तक विज्ञान की धारा प्रबल प्रवाह में बहती रही। इस प्रकार एशिया माइनर के परगैमम नामक नगर में भी एक आदर्श पुस्तकालय था। यूनान के प्रदेशों पर उत्तर की ओर से अनेक आक्रमण होने लगे थे जिनके कारण यूनान का साम्राज्य डगमगाने लगा; और अन्त में कुचल दिया गया। गाल जाति के पश्चात् रोमन कहलानेवाले नये विजयी लोग इटली से बाहर भी निकल पड़े। इन्होंने दारा और सिकन्दर के विशाल साम्राज्य का निखिल पश्चिमार्ध हड़प लिया। शक्तिशाली होते हुए भी ये कल्पना-शक्ति से शून्य थे।

इन लोगों की रुचि नीति तथा लाभ की ओर बहुत थी। अतः ज्ञान-विज्ञान की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे। यह है सिकन्दरिया के पुस्तकालय का संक्षिप्त वर्णन।

भारत का मुकुट हिमालय

भारत-माता के वक्षःस्थल पर गंगा, यमुना, मोती और नीलम की मालाओं के समान झूल रही हैं। सिंध, जेहलम, चिनाव, व्यास, ब्रह्मपुत्र आदि सरिताएँ इसकी बिखरी हुई शिरोरुह राशि के सदृश लहरा रही हैं। इसके कटि भाग पर कांची के समान विन्ध्य और सतपुड़ा पर्वतों की श्रेणियां सुशोभित हैं। इसके मस्तक पर पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ, दो हजार मील लम्बा हिमालय पर्वत का हिम-रजत से बना हुआ सुन्दर मुकुट रक्खा है; जिसका वर्णन कविशिरोमणि कालिदास ने कुमारसम्भव में इस प्रकार किया है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

उत्तर दिशा में देवताओं की आत्मा अर्थात् देवाकार गिरिराज हिमालय धरती के मानदण्ड के समान पूर्व और पश्चिम के समुद्रों का अवगाहन करते हुए सुशोभित हो रहा है।

राजा पृथु के आदेश से सभी पर्वतों ने हिमालय को बछड़े

के समान कल्पित किया, सुमेरु पर्वत को चतुर दोहनेवाला बना कर पृथ्वी को दुहा। दोहन करने से दूध के स्थान पर चमकीले रत्न तथा दिव्यौषधियाँ उपलब्ध हुई।

धार्मिक दृष्टिकोण से भी हिमालय पर्वत प्राचीनकाल से अति पुनीत समझा जाता है। संस्कृत के काव्य, नाटक और पुराणादि ग्रन्थों में इसे पर्वतराज, गिरीश, हिमालय, हिमाचल आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। बहुत से विद्वानों का तो यह भी मत है कि वेदों में बतलाया हुआ सुमेरु या मेरु पर्वत भी यही है। हिमालय का उत्तुङ्ग शिखर संसार के सब पर्वतों के शिखरों को मात करता है। इसका विस्तार पश्चिम में गांधार और काश्मीर से लेकर पूर्व में ब्रह्म देश तक है। इसकी लम्बाई लगभग १६०० एवं चौड़ाई ३०० मील है। यह भारत की उत्तरी सीमा में दुर्भेद्य प्राकृतिक प्राकार के रूप में स्थित है। कांगड़ा, काश्मीर, कुल्लू, लाहुल, गढ़वाल, कुमायूं, नेपाल, भूटान आदि रमणीक तथा भव्य प्रदेश इसी की गोद में खेल रहे हैं। उत्तुङ्ग-शिखर बृहत् हिमालय, क्षुद्र हिमालय, काराकोरम, हिन्दूराज, हिन्दूकुश (विल्सन रॉयल का मत है कि हिन्दूकुश भी हिमालय के अन्तर्गत ही माना गया है) कैलात, लदाख, जङ्स्कार, पीरपंजाल, महाभारत, व्यास, धवलधार, शिवालक आदि पर्वत-श्रेणियाँ इसीके अन्तर्गत हैं।

इसमें गगन-मण्डलस्पर्शी ऐवरेस्ट शिखर (गौरीशंकर वा चोमोलुङमा) की ऊंचाई समुद्र तल से पिछले माप के अनुसार २६००२ फ़ीट है, परन्तु आधुनिक माप से इसकी ऊँचाई २६१४१ फ़ीट है। काराकोरम का दूसरा शिखर गाडविन आस्टिन २८२५० फ़ीट है। मकालू २७७६० फ़ीट है। कांचन-जंघा २८१४६ फ़ीट है। नंगा पर्वत २६६६० फ़ीट है। धवल-गिरि २६७६५ फ़ीट है। गोसाईं थान, २६२६१ फ़ीट है। गणेश शिखर २५४४७ फ़ीट है। नंदादेवी २५६४५ फ़ीट है। जोङ्सोङ २४४७२ फ़ीट है। चोमोल्हारी २३६३० फ़ीट है। द्रोणगिरि २३१८४ फ़ीट है। गौरीशंकर २३४४० फ़ीट है। स्वर्गारोहिणी २३२४० फ़ीट है। पंचचूल्ही २२६५० फ़ीट है। नन्दकोट २२५१० फ़ीट है। कैलास २२०२८ फ़ीट है। इत्यादि अनेक हिमाच्छादित शिखर हैं, जिनकी छटा बड़ी ही अनुपम है।

प्राचीन शास्त्रों ने हिमालय को देवताओं की तपोभूमि, विहार-स्थल तथा समावेश-स्थल के नाम से पुकारा है। हिमालय को एक राजा कहा है। यह नहीं कह सकते कि इस पर्वत को ही राजा का रूप दिया गया है, या इस भूमि पर शासन करनेवाले किसी नरेश का नाम ही हिमालय था। अस्तु, पार्वती को उसकी आत्मजा, शिव नाम के एक योगिराज को उसके (पार्वती के) पति के रूप में वर्णन किया है। संस्कृत के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों में तथा कवियों की कल्पनाओं में हिमालय पर्वत को प्राचीन काल से

शिव-पार्वती का निवास तथा क्रीड़ास्थान माना है। सुर, असुर, देव, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग, यक्ष आदि पात्रों की क्रीड़ाभूमि तथा विहारस्थली इसी को बतलाया गया है। पौराणिक गाथाओं के वर्णन से पता चलता है कि धन के स्वामी कुबेर भगवान् की राजधानी अलकापुरी कैलास पर्वत के ही निकट है। लक्ष्मण के मूर्छित होने पर सुषेण वैद्य द्वारा बतलाई संजीवनी बूटी श्री पवनकुमार द्रोणगिरि से ले गये थे। वह द्रोणगिरि भी, जिसकी ऊँचाई समुद्रतल से २३१८४ फ़ीट है, यहीं हिमालय पर स्थित है। पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ की पूर्ति के लिए जिस गंधमादन पर्वत से सुवर्ण प्राप्त किया था, वह भी यहीं है। वीराग्रणी अर्जुन ने इसी पर्वत पर शिव की तपस्या करके पाशुपत अस्त्र का वर प्राप्त किया था, इसके अतिरिक्त अन्य अनेक दिव्यास्त्र भी प्राप्त किये थे। अश्वमेध के पश्चात् इसी हिमालय के स्वर्गारोहणगिरि से पाण्डवों ने स्वर्ग की ओर गमन किया था। यहीं शान्त एवं पुनीत वनों में बैठ कर वाल्मीकि तथा वेदव्यास आदि महर्षियों ने रामायण और महाभारत जैसे पवित्र तथा आदरणीय ग्रन्थरत्नों को लिख कर संसार का महान् उपकार किया है। अद्वितीय महाकवि कालिदास के हृदयगिरितल से प्रवाहित होती हुई कविता-सरित् इसी स्थान से बह कर सहृदय-हृदयों को आज भी आनन्द-विभोर बना रही है।

हिमालय में ही प्राचीन काल में नर नारायण, मुचकुंद आदि ऋषियों, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ आदि महर्षियों, कपिल, गौतम, कणाद आदि दार्शनिक मुनियों, शंकर, गौड़पाद आदि आचार्यों तथा साधक सिद्ध योगियों, ने अपनी तपस्या-स्थली बनाई थी। इसी के मध्य में दिव्य, पुनीत और उत्कृष्ट आध्यात्मिक प्रेरणाओं से युक्त यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ, तुंगनाथ, कल्पनाथ, रुद्रनाथ, पशुपतिनाथ, त्रिलोक-नाथ, मुक्तिनाथ, अमरनाथ, विष्णुपाद, शारदा, नारदा, रेवाल-सर, ज्वालामुखी, श्री कैलास और मानसरोवर आदि तीर्थ-स्थान विद्यमान हैं। बड़ी २ पवित्र महानदियों का निर्गम स्थान भी यही पर्वतराज है। अधोनिर्दिष्ट महानदियां इसी की उद्भूति हैं:—गंगा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, मन्दा-किनी, करनाली, सरस्वती, अलकनन्दा, सरयू, गोमती, गंडकी, शतद्रु, वितस्ता (जेहलम), चन्द्रभागा (चिनाब), इरावती (रावी), इत्यादि।

इसकी प्राकृतिक छटा नेत्रों को शान्ति प्रदान करनेवाली तथा मन को प्रफुल्लित रखनेवाली है। इसमें काश्मीर जैसे धरणी के स्वर्ग-प्रदेश, संसारविख्यात उत्तुङ्ग शिखर, प्रचण्ड ज्वालामुखी, उष्ण और शीतल जल के स्रोत भी विद्यमान हैं।

गिलगित और ब्रह्मपुत्र, गम्भीर गर्तवान् गोज, खैबर सदृश दर्रे, पिंडारी और बालतरी जैसी विशाल नदियाँ, सुन्दर

मनोरञ्जक हृदयविस्मयकारी जलप्रपात भी इसी की उद्भूति कहलाते हैं।

अष्टवर्ग (च्यवन ऋषि के बतलाये हुए च्यवनप्राश में प्रयुक्त होनेवाली आठ ओषधियाँ), ज्योतिष्मती, ब्राह्मी, ममीरा, सोमा, संधानकारिणी आदि अगणित जीवनोपयोगी महौषधियां तथा उत्तमोत्तम अनेक जड़ी-बूटियां इसी की देन हैं। भिन्न २ वर्णों के, सुवासित पुष्पों और सहस्रों प्रकार के कन्द, मूल, फल, भूर्ज, देवदारु शीशम, चीड़ आदि वृक्षों को उत्पन्न करने का श्रेय इसी उन्नत पर्वतराज को है।

लोहा, रांगा, सीसा, चाँदी, सोना, चूना, गन्धक और हरताल आदि धातु तथा उपधातुओं की निहित निधियां इसी के अन्तर्गत हैं। नाना प्रकार की सुन्दर खगावलि और सिंह, हाथी, मृग, भालू, कस्तूरीमृग, साही, चमरी धेनु, आदि वन्य पशु इसी स्थान पर जीवन को ससुख व्यतीत कर रहे हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनी भगवद्गीता में विभूतियों का वर्णन करते हुए 'स्थावराणां हिमालयः' ऐसा कह कर इसका गौरव प्रकट किया है।

यह कहना कोई अत्युक्ति न होगी कि अपनी प्राकृतिक, निराली तथा अनुपम प्राकृतिक छटा से हिमालय योरुप के आल्प्स और अमेरिका की रॉकी पर्वतमाला के मनोरंजक दृश्यों को पृष्ठभूमि में डाल देता है। संस्कृत साहित्यकारों ने इसकी शोभा का

अनुपम चित्र उपस्थित किया है। इनकी छवि की प्रशंसा केवल हमारे साहित्यज्ञों तथा कवियों ने ही नहीं की, प्रत्युत पाश्चात्य देशवासियों ने भी इस पर सहस्रशः पुस्तकें लिख डाली हैं।

लन्दन (कइयों का विचार है कि सम्भव है नन्दन वन यही हो पर ऐसा कहना भ्रममूलक होगा) के रॉयल भौगोलिक परिषद् के भूतपूर्व अधिनायक सर फ्रैंसिस यंग हस्बेंड ने सन् १६३७ में लिखा था कि—"भारतीयों की धार्मिक भावनाओं में जागृति पैदा करनेवाला केवल हिमालय है।" इसीलिए उन्होंने अपना प्रसिद्ध निर्माण-स्थल इसे ही बनाया। हम लोगों को पूर्ण निश्चय है कि हिमालय में भव्य तथा आदर्शभूत स्थानों को खोजने के लिए भारत और इंगलैण्ड द्वारा समान उद्योग किया जाय तो इसके प्रति भारतवासियों की श्रद्धा पहले से भी कहीं अधिक जागरूक हो उठेगी। यदि इस पर्वतराज के रम्य तथा सुन्दर स्थानों का पता लगा कर, उनसे बाह्य संसार को भी परिचित करा दिया जाय तो यह स्थल भी तीर्थस्थान बन सकते हैं। इन्हें भी आजकल के तीर्थों के सदृश सुरक्षित रक्खा जायगा।

कर सकता था! कोई भला उससे पूछता भी कैसे ? वह कोई बालक तो था ही नहीं। १६ वर्ष का दृढ़, वीर, साहसी पुरुष था। उस के मुख की कान्ति से यह स्पष्ट होता था कि वह एक होनहार व्यक्ति है। उसके इस मौन कर्म ने लोगों को आशंका के समुद्र में डाल दिया। जिस व्यक्ति ने भी उसे देखा, वह उसे समझ नहीं पाया। कइयों ने सोचा कि "महीयांसो मितभाषिणः" इस उक्ति को निकष पाषाण पर परीक्षित करने से प्रतीत होता है कि यह गौरवशाली व्यक्ति है। पर जब उसके भिन्न २ प्रकार की पुस्तकों के पन्ने उलटने के व्यापार को देखते तो किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते थे। योग्य पठित व्यक्तियों ने तो उसके पदक तथा वेशभूषा को देखकर निश्चय कर लिया था कि यह संयुक्तराष्ट्र के नौ-सेना विभाग का एक इञ्जिनियर है। परन्तु एक प्रतिष्ठित इञ्जिनियर का इस प्रकार अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन की गलियों में घूमना कितना अखरता होगा। अस्तु, वास्तव में बात यह थी कि यौवनावस्था के साहसपरिपूर्ण भाव से युक्त राबर्ट पैरी की इस ओजपरिपूर्ण मुद्रा के तले अस्पष्टलक्ष्यता के भाव निहित थे। अभी तक उसके अपने पैर डगमगा रहे थे और वह स्वयं अपने लक्ष्य को निर्धारित करने में असमर्थ हो रहा था। परन्तु जीवन में अद्भुत, विस्मयोत्पादक, संसार को चका-चौंध करनेवाले किसी साहस-पूर्ण काम की धुंधली-सी महत्वाकांक्षा अन्दर ही अन्दर

उसे आगे की ओर बढ़ाती ले जा रही थी। यह महत्वाकांक्षा मौन भाव से संकेत द्वारा उसे समझा रही थी कि यह तुम्हारे लिए आगे बढ़ने का अवसर है। अस्पष्ट आशासूत्र के सहारे मार्ग टटोल २ कर आगे बढ़नेवाले इस साहसी वीर को अपनी अद्भुत शक्तियों पर अटल विश्वास था। अपने जन्मस्थान की पहाड़ियों के कंकड़ तथा पाषाणों की नित्य छान-बीन और छोटी-सी डोंगी में निकट ही समुद्र-खाड़ी की यात्रा ने बाल्यावस्था में ही उसके मन को दृढ़ तथा आत्मविश्वासी बना दिया था। वह भी उसी स्थान पर उत्पन्न हुआ था जहां अर्धशताब्दी पूर्व उसके देश के राष्ट्रीय कवि-सम्राट् लांग फैलो ने वनों की सघन छाया में अपने स्वर्ण-स्वप्नों की माला गूंथते हुए अपना शैशवकाल व्यतीत किया था। उस स्थान के प्रभाव से वह भी उसी प्रकार प्रभावित हो उठा। वह भी कवि के समान अपने स्वप्न-सूत्रों के तार ऐंठने लगा। किसी ने सत्य कहा है, किशोरावस्था की अक्षुण्ण आकांक्षाएं आंधी और तूफ़ान के समान प्रबल वेगवती होती हैं। अब आप देखेंगे कि हमारे कथानायक इन स्वप्नों के पुष्पक विमान पर बैठ पर्य्यटन करते हुये कहां तक अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करते हैं।

पैरी की बाल्यावस्था के स्वप्नराशि के तांतों ने एक ऐसा नया तार बांधा कि वह महत्त्वाकांक्षा के रूप में परिणत होने

लगे। नौ-सेना विभाग की नौकरी से उसने अपनी योग्यता की धाक सब स्थानों पर जमा ली थी। जंगी जहाजों के लिए एक घाट बन रहा था। उसका ठेका लेने पर ठेकेदार भ्रान्त था कि इतने रुपयों की लागत पर यह काम कैसे पूरा किया जा सकता है ? ठेकेदार ने यह ठेका अधूरा ही छोड़ दिया। राबर्ट पैरी ने अपनी प्रतिभाशक्ति के द्वारा विचारकर १८ हज़ार में ही यह काम उत्तम ढंग से पूर्ण करवा दिया। प्रतिभाशालियों के मन को केवल इतना कर देने से ही शान्ति नहीं मिलती। वह अभी बेचैन होकर आगे बढ़ने की चाह रखते थे। राबर्ट पैरी की दशा उस व्यक्ति के समान थी जिसके मन की भारी आकांक्षाएं न जाने उसे किस अविदित स्थल की ओर ले जाएं, जो ऐसा निर्णय न कर सके। ढूंढते २ आज पैरी की दृष्टि एक मैली जीर्ण पुस्तक पर धंस गई। यह एक साहसी, खोज करनेवाले की साहसपूर्ण उत्तरी-यात्राओं की कहानी थी। पुस्तक का शीर्षक था "हरित द्वीप का भीतरी हिम-प्रदेश"। इस पुस्तक को पढ़ते ही पैरी के हृदय में एक अनोखी गुदगुदी पैदा होने लगी। उसने वह पुस्तक उसी क्षण खरीद ली। पुस्तक क्या थी, मानों वह उसका खोया हुआ रत्न था जिसकी ढूंढ में वह मारा मारा फिरता था। इसमें वर्णित हिम-प्रदेश ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया, अब भी पृथ्वीतल पर संयुक्तराष्ट्र अमेरिका से भी बढ़

चढ़कर भूभाग वर्तमान है जहां अभी तक किसी गौराङ्ग ने अपने पैर नहीं जमाये थे।

उसकी आकांक्षा प्रबल हो उठी। उसने वाशिङ्गटन नगर के पुस्तकालय की अलमारियों को टटोल डाला और अहर्निश उत्तरीय ध्रुव प्रदेश की खोज तथा उत्तर-पश्चिम के मार्ग से एशिया को जाने का मार्ग जानने के लिए सामग्री इकट्ठी करनी आरम्भ कर दी। इन पुस्तकों द्वारा उसे कोई विशेष ज्ञान-सामग्री उपलब्ध न हो सकी।

कितने ही साहसी वीर गत तीन सौ वर्षों से इस प्रयत्न में उत्तर की हिममयी भित्तियों से हार खाकर अपने आपको न्योछावर कर चुके थे। १८४५ में सर जान फ्रैंकलिन दो ब्रिटिश जंगी जलयानों को लेकर पहली बार ध्रुव-प्रदेश की ओर बढ़ा था। परन्तु हिमाक्रान्त पर्वतमाला ने दोनों जलयानों सहित फ्रैंकलिन और उसके सहचारियों को आ दबोचा। इस बात का पता लगभग १५ वर्ष पीछे लगा जब कोई और दल ध्रुव की खोज में वहां तक पहुंचा। कई अन्वेषक वीर कटिबद्ध होकर वहां गये पर मुंह की खाकर वहां से लौट आये। बहुत-से तो वहीं जीवन से हाथ धो बैठे। यह घटनाएं बड़े २ साहसी वीरों के साहस को भी तोड़ सकती थीं, पर पैरी के हृदय पर इनका विपरीत ही प्रभाव पड़ा। इन निराशाजनक घटनाओं ने उसके मन में और भी अधिक आशा की ज्योति जगमगा दी।

उसकी कल्पना विशेष रूप से उत्तेजित हो उठी। आशा उसे आगे ही आगे धकेलने लगी। अब उसे संसार की कोई शक्ति पीछे नहीं हटा सकती थी। उसने सोचा कि हरित द्वीप (ग्रीनलैण्ड) का भीतरी भाग यदि सचमुच ही खोजना अवशिष्ट है तो क्यों न वहां जाकर अपने भाग्य तथा साहस की परीक्षा की जाय? सम्भव है, वह ठीक उसी उत्तरी ध्रुव तक फैला हो।

उसने तत्क्षण नौ-विभाग से छः मास के अवकाश के लिए प्रार्थना की। अधिकारी अवकाश देना नहीं चाहते थे, पर उसकी दृढ़ता के सामने उन्हें विवश होना पड़ा। परिणामस्वरूप ह्वेल मत्स्य का शिकार करनेवाले नाविकों के साथ १८८६ ईसवी के जून मास में वह हरित द्वीप के पूर्वी तट पर डिस्को नामक द्वीप में जा उतरा। यह डेनिश लोगों का निवासस्थान है। पेरी के दृढ़ विचारों की छाया एक डेनिश जाति के नवयुवक के हृदयमण्डल पर ऐसी गहरी प्रतिबिम्बित हुई कि वह विवश उसके पीछे चल दिया। दस घण्टों की अविश्रान्त कठोर यात्रा के बाद जहां हिमपात आरम्भ होता है, वहां तक पहुंच गये। यह वह स्थान था जहां उसके पूर्ववर्ती साहसी वीरों को आगे बढ़ना कठिन हो गया था। यहां अङ्ग २ को कम्पा देनेवाली शीतल हवाएं, आंखों को बंद कर देनेवाला सूर्य का तीव्र प्रकाश, नेत्रों के प्रकाश पर

परदा डालनेवाले घन कुहरे की व्याप्ति, हिम की चुभनेवाली बूंदों की बौछार, आगे बढ़ने में बाधा डालने लगीं। पर साहसी के साहस ने इन प्राकृतिक बाधाओं को फटकार कर चकनाचूर कर दिया। दिन-प्रतिदिन हिमाक्रान्त भूमि को पार करते २ साहस-योग की समाधि में लीन होकर चढ़ाई करते हुए वे ७५०० फ़ीट की ऊंचाई पर जा चढ़े। यहां सोचने पर पैरी को पता चला कि वह अपने स्थान से १२० मील दूर आ पहुंचा है। अब उसके पास केवल एक सप्ताह का भोजन था। एक ओर आगे बढ़ने से भूखे मरने की चिन्ता, दूसरी ओर लक्ष्यच्युति, इन दोनों का पारस्परिक घोर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। अन्त में लक्ष्य पर पहुंचने की ही विजय हुई। भूख को लक्ष्य-पूर्ति ने पीछे धकेल दिया। उसने कई बार सोचा कि क्या अब पीछे ही लौटना पड़ेगा? क्या इतनी दूर तक आने का यह सब परिश्रम व्यर्थ ही जायगा? अब श्वेतनील प्रकाश वाले ध्रुव प्रदेश की ओर पैरी दृष्टि गाड़े खड़ा था और वह डैनिश नवयुवक भी एक विस्मयभरी दृष्टि से उसकी ओर ताक रहा था। ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके पूर्ववर्ती अन्वेषकों की भान्ति उसका यह साहस भी कहीं विफल ही न हो जाय। यह तो एक क्षणिक विचार की अस्तमयी झांकी थी। उसका दृढ़ संकल्प कुछ और ही था।

१८६१ में न्यूयार्क से एक दल उत्तरी प्रदेश में खोज के लिए

प्रस्थित हुआ था। परन्तु मनुष्यों ने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। हां, एक बात लोगों के हृदय में अवश्य खटकती थी। वह थी—पैरी की नवविवाहिता पत्नी जोज़फाइन का साथ होना।

अब मेलवील नामक खाड़ी में जलयान हिमशिलाओं से टकरा कर रुक गया। परन्तु पैरी ने डाइनामाइट से हिम को तोड़-फोड़ कर अपना मार्ग बना ही लिया। अब जहाज़ आगे बढ़ने लगा, इतने में एक हिम-शिला का विशाल खण्ड टूट कर और उछलकर पैरी के पैर पर इतने ज़ोर से लगा कि उसके पैर की दोनों हड्डियां टूट कर चकनाचूर हो गईं। वह चाहे लंगड़ा हो गया, पर साहस के चार पैर उसको लग गये। उसके अंग-भंग ने उसके दृढ़ साहस पर लवलेशमात्र भी प्रभाव नहीं डाला। परिणामस्वरूप जलयान को तट पर लगाया गया। तट पर बसनेवाले "सील" का शिकार करनेवालों से परिचय किया और उनसे खूब जान-पहचान बढ़ाई। सील के शिकारियों को "एस्किमो" नाम से पुकारा जाता था। शीतकाल व्यतीत करने के लिए झोंपड़ियां तैयार की गईं। छः मास तक वहां विश्राम करके फिर धावा बोल दिया गया।

पैरी के साथ केवल दो मनुष्य और १६ कुत्ते थे। अब आगे बढ़ते ही फिर वही शरीर को चुभनेवाली पवन, हिम की अटूट वृष्टि, कुहरे का घोर अंधकार, सूर्य की किरणों की झुलसाहट,

भयानक चुड़लों की भांति मार्ग रोक कर खड़ी [illegible] रही थीं, पर साहसी के दृढ़ संकल्प ने उनका [illegible] कि क्षण भर में उनका कुछ अता-पता न चला। पर साहसी वीर उनके सम्मुख कब हार माननेवाला था! आगे बढ़ता ही गया। सप्ताह बीत गये। अन्त में एक पहाड़ के किनारे पर जाकर रुक गये। इतने ही में एक अपूर्व दृश्य, इन्द्रजालिक दृश्य के समान, उनके समक्ष आ खड़ा हुआ। कहीं नील [illegible] हिम था। विशाल श्वेत मरुप्रदेश, हरित आकृति वाले जल के बहते हुए असंख्य नाले, अनेक नदियों का वेग, विविध प्रकार के [illegible] तथा झरने—इस अद्भुत दृश्य को देखकर साथ रहनेवाले [illegible] मानो नौ नौ बांस कूदने लगे।

१८९२ की ४ जुलाई को वह हरित द्वीप को लांघकर उत्तरी महासागर की हिममयी चादर के कोने पर जा खड़ा हुआ।

अब भी ध्रुव कुछ कम दूर न था, मार्ग भी अभी दुर्गम तथा कठिन ही था।

विवश हो इस बार भी वह हिम-शिला से घबरा-सा गया। यही उसकी अचिरस्थायी पराजय थी। न्यूयार्क में वापिस आने पर नौ-विभाग के मंत्री ने कहा—"बस करो पैरी, बार २ ऐसी धृष्टता से हानि मत उठाओ। अपना काम संभालो। बताओ, किस स्थान पर तुम्हें नियुक्त किया जाय?"

पैरी ने उत्तर दिया—"उत्तरी ध्रुव प्रदेश में महानुभाव!"

खर्च करना पड़ा है। क्योंकि यातायात के लिए उपयोग में आने-वाले साधनों का व्यय बहुत कम है। देश की यात्रा छोटी २ नावों पर चढ़ कर नहर द्वारा बड़ी सुगमता से कर ली जाती है। नहरों के तट पर खड़े होकर देखने से नावों का दृश्य कितना सुहावना लगता है ?

योरुप महाद्वीप में सबसे पहले बेल्जियम में ही वाष्प-शकटियों का निर्माण हुआ था। यहां रेलवे लाइन १८३५ ई० में बनी थी और ब्रूसेल्स से मेलाइन्स तक बनाई गई थी। अब बेल्जियम में बहुत-सी लाइनें हैं, जो बेल्जियम सरकार की हैं। बेल्जियम-वाष्पशकटियों के लिए साप्ताहिक टिकट मिलते हैं। यह टिकट कम से कम ५ दिनों के लिए अवश्य लेना पड़ता है। ५ दिन के लिए प्रथम श्रेणी का टिकट लगभग १६ रु० में, द्वितीय श्रेणी का १३ रु० में तथा तृतीय श्रेणी का ७ रुपये में मिलता है। इन टिकटों को लेकर बेल्जियम शासक की गाड़ी में सब कहीं यात्रा की जा सकती है। टिकट लेते समय १ घण्टा पूर्व अपनी फोटो (प्रतिकृति) की एक प्रति स्टेशन पर देनी पड़ती है। इन नियतकालीन टिकटों को "अबोन्मेण्ट" कहते हैं। छोटा देश होने के कारण ही आज हम बेल्जियम की मानसिक यात्रा करने के लिए उद्यत हुए हैं। आस्टेण्ड से लीज नगर की दूरी सब से अधिक मानी जाती है। परन्तु यह दूरी केवल ४ घण्टे की यात्रा में ही समाप्त हो जाती है।

आस्टैण्ड से ब्रूगेस नगर की यात्रा केवल २० मिनट में समाप्त हो जाती है। यह नगर मृतक नगर कहलाता है। किसी समय यह नगर बड़ा धन-सम्पन्न था। फ्लेमिश जुलाहे उस समय बड़े प्रसिद्ध थे और ब्रूगेस उनके व्यापार के लिए प्रसिद्ध नगर था। यह उत्तरी वेनिस के नाम से पुकारा जाता था।

देखो, बेल्जियम के नगरों में "बेल्फीरी" बने हुए हैं। ये स्तम्भ मस्तक को उन्नत किये खड़े हैं। प्राचीन काल में इन्हीं स्तम्भों पर बैठ कर चौकीदार आक्रमण तथा भय की सूचना देता रहता था। ब्रूगेस के स्तम्भ सभी नगरों के स्तम्भों से अधिक सुन्दर हैं। उनमें प्रत्येक १५ मिनट के बाद घंटी बजती है।

यहाँ हार्बर "नाव स्थान" भी है। बड़े २ जलयान यहां आकर विश्राम करते हैं। नगर की पुष्पोत्पादक वाटिकाओं (नर्सरी गार्डन) में बहुविधात्मक पुष्प उगाये जाते हैं। बहुत अधिक संख्या में ये पुष्प विदेश में भी भेजे जाते हैं।

एण्टवर्प नगर स्चेल्ट नदी पर स्थित है। घेण्ट आदि नगरों की भांति यह भी एक प्राचीन नगर है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में स्चेल्ट नदी में एक राक्षस का निवास था। वह प्रत्येक मल्लाह से रुपया मांगता था, जो ऐसा करने से बुरा मानते थे उनका एक हाथ काटकर नदी में फेंक देता था। डच भाषा में वर्पन शब्द का अर्थ फेंकना है। जहां पर वह राक्षस

निवास करता था उस स्थान का नाम "हैराण्ड वर्पन" है। उसी के नाम पर नगर का नाम एण्टवर्प रक्खा गया है।

अब नगर तो आपने देख ही लिये, आइए, बेल्जियम की प्रथा, प्रणाली तथा रहन-सहन-विधि का सिंहावलोकन करें।

जब बच्चा पैदा होता है तो मित्रों के पास चीनी के डलों का संदूक भेजा जाता है। यदि लड़का उत्पन्न हो तो सन्दूक लाल फ़ीते से और यदि लड़की हो तो नीले फ़ीते से बन्द किया जाता है। बच्चे का नामकरण-संस्कार उसकी धर्ममाता करती है। या तो वह बच्चे का वंशज नाम रखती है या किसी साधु के नाम पर रखती है। लड़कियों का नाम प्रायः वर्जिन (कुमारी) मेरी रक्खा जाता है। सात वर्ष पर्यन्त कन्याओं को श्वेत तथा नीले रंग के वस्त्र पहनाये जाते हैं। ७ वर्ष के उपरान्त बपतिस्मा दिया जाता है। उस समय धर्मपिता, धर्ममाता तथा कन्या की माता को एक जोड़ा दस्ताने देना है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अधिकांश माता-पिता चाहते हैं कि उनके लड़की पैदा हो। लड़के का सैनिक बनाना आवश्यक होता है। बच्चों की देख-भाल के लिए १४, १५ वर्ष की युवतियां बहुत कम वेतन पर रक्खी जाती हैं। इनके शासन में बच्चों के स्वभाव बिगड़ जाते हैं।

११ अथवा १२ वर्ष के आरम्भ में बच्चों को कम्यूनियन संस्कार में भाग लेना पड़ता है। यह मार्च के अन्त में मनाया

जाता है। कम्यूनियन के दिन लड़के काले कपड़े पहनते हैं और लड़कियां श्वेत। लड़कियां जूते बहुत कस कर बांधती हैं, जिससे उनके पैर छोटे प्रतीत हों।

बच्चे प्रथम कम्यूनियन के पश्चात् मित्रों के निकट ले जाये जाते हैं। वे बच्चों को पारितोपिक आदि देते हैं।

प्राचीन समय में वेल्जियम को बहुत छोटे २ भागों में विभक्त किया गया था। प्रत्येक राज्य पर शासन करनेवाला कोई न कोई काउएटड्यूक अथवा वैरन होता था।

सब राज्यों में फ़्लैएडर्स राज्य सब से मुख्य गिना जाता था। नगरों में व्यापारी लोग संस्थाओं द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध थे। उनकी संस्थाओं का नाम गिल्ड था।

१६०८ ई० में वेल्जियम पॉर्लमेंट ने कांगो को वेल्जियम का उपनिवेश बनाने का निश्चय कर लिया। पारस्परिक वाद-विवाद के पश्चात् निर्णय हुआ कि कांगो को वेल्जियम का उपनिवेश बना लिया जाय। ऐसा ही किया गया। १६०६ में लियूपोल्ड इस अनश्वर संसार से चल बसे, उसके भतीजे अलवर्ट ने राजसिंहासन संभाला। अलवर्ट स्वयं कांगो की देख-रेख के लिए गया था। आजकल भी कांगो का प्रबन्ध अन्य राष्ट्र के उपनिवेशों के समान हो रहा है।

जव कोई भी जलयान वेल्जियम से कांगो की ओर जाता

है तो बड़ा आनन्द-मंगल होता है। दर्शकों का झुण्ड इकट्ठा हो जाता है। बाजे बजते हैं और झंडा लहराया जाता है।

१६१४ ई० से शिक्षा आवश्यक-सी हो गई है। घरेलू काम के साथ २ लड़कियों को अर्थशास्त्र की भी शिक्षा दी जाती है। गांवों में लड़कों को खेती करने तथा उपवन लगाने की शिक्षा दी जाती है।

इंगलैण्ड, जर्मनी तथा दूसरे देशों की भांति बेल्जियम में बड़े दिन का उत्सव नहीं मनाया जाता। इन दिनों चर्चों (गिरजाघरों) में कुछ प्रार्थना आदि की प्रथा तो अवश्य है, पर वहां क्रिसमस वृक्ष बड़े दिन के लिए समर्पित नहीं किये जाते। बड़े दिन के अवसर पर निमंत्रण भी नहीं दिया जाता।

ईसाई होने से पूर्व बेल्जियम देश मूर्तिपूजक था। म्यूज़ की घाटी में वहां के निवासी अपने शीतकाल के मध्य में होनेवाले उत्सव के निमन्त्रण के समय सूअर आदि का मांस खाते थे। अब उसी की स्मृति में वायूर निवासी बड़े दिन के अवसर पर भुना हुआ सूअर का मांस खाते हैं। ब्रूसेल्स-निवासी शाहबलूत के फलों का उपयोग करते हैं। शाहबलूत के फल शुभाशुभ परीक्षा के लिए होते हैं। नये विवाह के अवसर पर बलूत के फल आग में डाले जाते हैं। यदि वे ठीक जल जायं तो शुभ है, यदि फट जायं या छिटक कर पृथक् हो जायं तो उसका फल अशुभ मानते हैं।

वेल्जियम के कुछ नगरों में संध्या के समय कुछ निर्धन बालक घर २ गाना सुनाते हुए भिक्षा मांगते हैं। उनका प्यारा गाना इस प्रकार है—

ब्रीडेन नाच, ओ ब्रीडेन नाच, मशीहा इज जेबोरिन ?

यह गाना फ्लेमिश भाषा के शब्दों में है। इसका अर्थ है कि ऐ पवित्र रात्रि, ऐ पवित्र रात्रि ! मसीहा पैदा हुआ है।

वेल्जियम में वर्ष का प्रथम दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। वर्ष का अन्तिम दिवस ३१ दिसम्बर सेण्ट सील-वेस्टर का माना जाता है। उस दिन जो बालक देर में सोकर उठता है, वह अपने बहन भाइयों को सुन्दर खिलौने देता है। घर की जो बड़ी लड़कियां आरम्भ किये हुए किसी काम को उस दिन समाप्त नहीं करतीं, उनका विवाह एक वर्ष तक नहीं हो सकता। घर में सभी प्राणी गाना बजाना करते हैं। जब रात को १२ बजते हैं, सभी एक दूसरे को चूमते हैं, आगामी वर्ष के लिए शुभकामना करते हैं।

वेल्जियम-निवासी जलूस तथा उत्सवों में बड़ी रुचि रखते हैं। यहां सन १४६८ ई० में एक उत्सव मनाया गया था। उसी वर्ष अंग्रेज राजबाला मारगरेट ऑफ़ यार्क ने बर्गण्डी के ड्यूक चार्लस बोल्ड के साथ विवाह किया था। उस वर्ष बर्गस् के राजमार्ग पर एक बड़ा प्रोत्साहक टोर्नामेन्ट खेला गया, जिसमें बहुत से शूरवीरों ने भाग लिया। इस टोर्नामेण्ट का नाम

को फेंकता हुआ चलता है। यह कहा जाता है कि जो लोग इन्हें अपने दान्तों से तोड़ लेते हैं, उन्हें कभी दन्तपीड़ा नहीं होती।

११ नवम्बर बेल्जियम में सेण्ट का दिन माना जाता है। ११ नवम्बर की संध्या बेल्जियम के बच्चों के लिए बड़ी कल्याणप्रद मानी जाती है।

लड़कों के माता-पिता अपने बच्चों को भित्ति की ओर मुंह करके खड़ा कर देते हैं। उन्हें बोलने तथा पीछे देखने के लिए निषिद्ध कर देते हैं। यदि लड़के पीछे देख लें या प्रश्न करने लग जायं तो कुछ लाभ नहीं होता। यदि वह मौन होकर उसी अवस्था में खड़े रहें तो अखरोट और सेव आदि की वृष्टि होने लगती है। बालकों को यह बतलाया जाता है कि ये फल सेंट मार्टिन द्वारा बरसाये गये हैं। सेंट मार्टिन के दिन पिता कमरे में साधु का वेष धारण करके जाता है और उनसे पूछता है कि तुम अच्छे बालक रहे या बुरे। यदि अच्छे रहने का उत्तर मिले तो उन्हें मिष्टान्न वितरण किया जाता है, यदि बुरा होने का उत्तर मिले तो कमरे में एक कोड़ा फेंक कर वह चला जाता है।

भारतवर्ष के होली त्योहार की भान्ति बेल्जियम में सेंट मार्टिन दिवस पर एक उत्सव मनाया जाता है। ६ दिसम्बर को सेंट निकोलस का दिन भी मनाया जाता है। कहते हैं कि ६ दिसम्बर की रात्रि को सेण्ट निकोलस श्वेत घोड़े पर या गधे पर सवार होकर आकाश में घरों तथा क्षेत्रों पर विचरता हुआ वातायनों

द्वारा बच्चों के लिए फल, मिठाई तथा खिलौने गिराता हुआ चलता है। बुरे बच्चों के लिए वह कोड़े ही गिराता है। सोते समय बालक सेण्ट निकोलस के लिए गाना भी गाते हैं—

उसका अभिप्राय यह है कि "ऐ श्रेष्ठ निकोलस ! कृपा करके मेरे छोटे से जूते में एक छोटा-सा सेब अथवा नींबू डाल दे।"

निकोलस-दिवस के कुछ दिन पश्चात् २१ दिसम्बर को टेन्स-टामस दिन भी मनाया जाता है। उस दिन बच्चे कोई बहाना करके अपने माता-पिता को घर से बाहिर निकाल देते हैं। जब तक माता-पिता बच्चों को मिठाई देने की प्रतिज्ञा नहीं कर लेते तब तक वे घर का ताला नहीं खोलते। 'टामस-दिन' 'टामस-दिन' कह २ कर कूदने लग जाते हैं।

इसके एक सप्ताह पश्चात् "अल्लर किण्डरेनडैग" (बाल-दिवस) मनाया जाता है। कभी हिरोद ने बच्चों की हत्या की थी, उसी स्मृति में यह दिवस मनाया जाता है। इस दिन ज्यों-त्यों करके बालक अपने माता-पिता के कपड़े पहन लेते हैं। उस दिन वे घर के स्वामी बनने का अभिनय करते हैं। दासों से यथेष्ट आदेश का पालन भी करवाते हैं। निर्धन बालक अपने माता-पिता के कपड़े पहन कर अपने को छोटे माता-पिता व्यपदिष्ट करते हुए भिक्षा मांगते हैं।

शीतकाल में छोटे बच्चे इस प्रकार अपने उत्सव मनाते

जमैका—वैस्टइण्डिज़ में से एक द्वीप।

ट्रिनिडाड—वैस्टइण्डिज़ में से एक द्वीप।

फ़ाहियान

३५ शानसी—पश्चिमी चीन का एक प्रान्त।

३६ विनयपिटक—बौद्धों का आदरणीय ग्रन्थ।

४७ हान देश—चीन के राजवंश के रहनेवालों का देश।

४८ लेह—कश्मीर के उत्तर में लदाख़ की राजधानी जहाँ पिछले दिनों श्रीप्रधानमंत्री पं० नेहरू जी भी पधारे थे।

कैलास-यात्रा

६३ कैलास—हिमालय की एक धार जो काश्मीर के पूर्व-उत्तर में है।

६४ एवरेस्ट शिखर—हिमालय की सबसे बड़ी चोटी।

माउण्टब्लॉक—एल्प्स योरुप का सबसे उत्तुङ्ग शिखर।

७६ यारकन्द—मध्य एशिया में व्यापार का केन्द्र।

ल्हासा—तिब्बत की राजधानी

उत्थितवाहु—एक प्रकार के हठयोगी साधु।

७८ गरतोक—कैलास जाते समय मार्ग में एक विशेष स्थान।

मातृभक्त नेपोलियन

८६ सेंटहेलना—अटलांटिक समुद्र में एक द्वीप जहाँ नेपोलियन को क़ैद कर दिया था।

८७ कॉर्सिका—मैडिट्रेनियन (बहरारूम) में एक द्वीप जो फ्रांस के आधीन है।

सेंट क्लाउड—फ्रांस में एक स्थान।

९० लियन्स—फ्रांस के पूर्व-दक्षिण में रोन दरिया के किनारे एक उत्तम स्थान।

९२ जेकोबिन—क्रान्तिकारी फ्रांस का दल।

गिलोटिन—मृत्युदण्ड का शस्त्र जो क्रान्ति के पश्चात् फ्रांस में प्रयुक्त किया गया।

९३ अजेक्सिया—कॉर्सिका की राजधानी।

९४ नाइस–फ्रांस का एक प्रसिद्ध स्थान।

९५ मारसेल्स–फ्रांस की मैडिट्रेनियन (बहरारूम) समुद्र पर सबसे बड़ी बन्दरगाह।

९६ पीडामोन्टिस–इटली में एक दुर्ग (क़िला)।

मेरीटाइम–फ्रांस के एल्प्स पर्वत पर एक दर्रा।

बरमा का दिग्दर्शन

१०३ अराकानयोमा–बरमा का एक प्रसिद्ध पर्वत।

१०४ कर्करेखा–भूमध्य रेखा के उत्तर की ओर एक कल्पित रेखा।

१०५ टनासिरम–बरमा का एक प्रसिद्ध पर्वत।

टौंगू–बरमा का एक प्रसिद्ध शहर।

१०६ लाशिवो–बरमा और चीन की सड़क पर एक प्रसिद्ध स्थान।

लन्दन और पैरिस के आवश्यक स्थानों की मानसिक परिक्रमा।

११६ फ़िनिशियन–पैलस्टाइन में एक व्यापारी जाति जिसने उत्तरीय अफ्रीका को जीतकर कार्थेज साम्राज्य स्थापित किया।

क्रामवेल–इंगलैण्ड का प्रसिद्ध शासक और योधा (१६४६–१६५६ तक)।

मैगनाकार्टा–इंगलैण्ड के बादशाह जोन ने अपने लोगों को जो अधिकार समर्पित किये, उनकी विज्ञप्ति १२१५।

जनरेल हेग–प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश जनरल।

सम्राट्नार्मनविलियमरूफस–इङ्गलैण्ड का राजा, नार्मण्डी का ड्यूक। शासनकाल १०८७–११००

११७ पैलस्टाइन–रोम सागर के तट पर एशिया के दक्षिण-पश्चिम में एक छोटा प्रदेश जिसमें अरबों और यहूदियों के मध्य झगड़ा चल रहा है।

स्टुआर्टवंश–इंगलैण्ड का प्रसिद्ध राजवंश १६०३–१७१४

हनोअरवंश–स्टुआर्ट वंश के बाद ब्रिटेन का राजवंश।

के वैवाहिक सम्बन्ध से पैदा हुआ हो। (दोगला)

११२ वैमनस्य–शत्रुता।

विद्वेषाग्नि–शत्रुता की आग।

११३ दिग्दर्शन–संक्षिप्त वर्णन।

११४ केसरी–शेर (सिंह)।

शृङ्ग–सींग।

११५ गटक कर जाता है–निगल जाता है।

व्यय–खर्च।

११६ मानसिक–मन से की हुई।

सम्राट्–बादशाह

११७ अनन्तकाल के लिए सो रहे हैं–मर गये हैं।

परिमित–अन्दाज़े की।

टन–२८ मन।

विमुग्ध–मोहित।

भव्य–सुन्दर।

११८ वनिताओं–स्त्रियों।

प्रपंच–पाखंड।

भूपति–राजा (पृथ्वी की रक्षा करने वाला)।

आगार–स्थान।

११९ पाषाण-निर्मित–पत्थर की बनी हुई।

त्वरा–शीघ्रता (जल्दी)।

प्रासाद–महल।

१२० अनन्य सदृश–अद्वितीय।

उद्घोषित किया था–ढँढोरा पीटा था।

प्रकोष्ठ–कमरा।

आमोद प्रमोद–आनन्द विनोद

तरङ्गिणी–नदी।

१२१ मज्जनोन्मज्जन करते रहे होंगे–डुबकियाँ लगाते रहे होंगे।

रक्तपिपासु–खून का प्यासा।

वर्तुलाकार–गोल।

काष्ठपीठिका–मेज़।

अभियुक्त–अपराधी जिन पर अभियोग-मुक़द्दमा किया जाता है।

प्राड्विवाक–विचारक।

१२२ आकाश पाताल का अन्तर है–बड़ा भेद है।

कल्पनाश्व–ख़्याली घोड़ा।

अनिवार्य–आवश्यक।

प्रमुदित–प्रसन्न।

क्रीडनक–खिलौने।

१२३–गवेषणात्मक–खोज।

पराकाष्ठा–अन्तिम सीमा।

विद्यापीठ–यूनिवर्सिटी ।

आविष्कारक–नई वस्तु प्रचलित करने वाला ।

प्रतिकृतियाँ–फ़ोटो ।

समारोह–धूमधाम ।

१२४ लावण्योद्भासित–आभापूर्ण ।

अठखेलियां कर रही हैं–खिलवाड़ कर रही हैं ।

द्विगुणित–दूना ।

१२५ जलपोतों का–जलयानों का ।

१२६ मत्स्याकार–मछली के रूप का ।

पोतों की–जलयानों की ।

प्रचण्ड प्रकोप–तेज़ क्रोध ।

१२८ सम्पर्क–सम्बन्ध-मेल मिलाप ।

आक्रमण–हमला ।

प्रत्युत–बल्कि ।

प्रचुर–बहुत ।

१२६ निखिल विश्वज्ञान–सारे संसार का ज्ञान ।

१३० हस्तलिपियों को–हस्तलिखित पुस्तकों को ।

वैज्ञानिक–साइंस जानने वाले ।

कला कुशल–हुनर में चतुर ।

रसायन तत्त्व–पौष्टिक औषधियों का ज्ञान ।

१३१ प्राचुर्य–बहुतायत ।

१३२ गर्त–गढ़ा ।

हड़प लिया–निगल लिया ।

१३३ वक्षःस्थल–छाती ।

कटि–कमर ।

हिमरजत–बर्फ़ रूपी चान्दी

मानदण्ड–स्तर ।

अवगाहन–स्नान करना ।

१३४ दोहन करने से–दोहने से ।

दिव्यौषधियां–अलौकिक औषधियाँ ।

पुनीत–पवित्र ।

दुर्भेद्य–दुःख से तोड़ने योग्य ।

उत्तुङ्गशिखर–ऊँची शिखर ।

बृहत् हिमालय–बड़ा हिमालय

क्षुद्र हिमालय–छोटा हिमालय

अन्तर्गत हैं–बीच में हैं ।

१३५ हिमाच्छादित–बर्फ़ से ढका हुआ ।

आत्मजा–लड़की ।

१३६ पवनकुमार—वायु (हवा) के पुत्र हनुमान्।

पुनीत—पवित्र।

१३६ सहृदयहृदय—रसिकहृदय।

आनन्दविभोर—आनन्दमग्न।

१३७ उद्भूति—उत्पत्ति-स्थान।

स्रोत—झरना।

१३८ हृदयविस्मयकारी—हृदय में आश्चर्य उत्पन्न करने वाला।

सुवासित—सुगन्धित।

भूर्ज—भोजपत्र।

खगावलि—पक्षियों की पंक्ति।

चमरीधेनु—एक प्रकार की गाय (इसके पूछ के बालों की चवरी बनती है)।

स्थावराणां हिमालयः—पहाड़ों में हिमालय।

पृष्ठभूमि में डाल देता है—मात कर देता है (पीछे डाल देता है)।

१३९ प्रत्युत—बल्कि।

१४० कुतूहल—कौतुक।

शैशवकाल—बचपन।

१४१ पर्यटन कर रहे थे—घूम रहे थे।

गुदड़ी में लाल—छिपे हुए गुण वाला।

आकांक्षित रत्न—चाहा हुआ रत्न।

पिपासित—प्यासा।

१४२ होनहार—भविष्य में बड़ा बनने वाला।

महीयांसोमितभाषिणः—बड़े आदमी थोड़ा बोलते हैं।

निकषपाषाण—कसौटी।

पदक—मैडल।

अस्तु—ख़ैर।

अस्पष्टलक्ष्यता के भाव—साफ़ न प्रतीत होने वाले भाव।

विस्मयोत्पादक—आश्चर्य पैदा करने वाले।

धुन्धली—मन्द।

१४३ आशासूत्र—उम्मीद का धागा।

स्वर्णस्वप्न—सुनहरी सुपना।

किशोरावस्था—छोटी अवस्था

अक्षुण्ण—न टूटने वाली।

परिणत होने लगे—बदलने लगे।

१४४ अविदित स्थल—अज्ञात स्थान।

जीर्ण–पुरानी।
धंस गई–नीचे बैठ गई।
१४५ अहर्निश–रातदिन।
अन्वेषक–खोजने वाला।
कटिबद्ध–प्रस्तुत।
१४६ अवशिष्ट–बाकी।
प्रतिबिम्बित–परछाईं पड़ी
१४७ कुहरा–धुन्ध।
लक्ष्यच्युति–उद्देश्य से गिरना।
अस्तमयी–डूबनेवाली।
१४८ लवलेशमात्र–थोड़ा-सा भी
१४९ ऐसा छू-मन्त्र मारा–ऐसा प्रभाव डाला।
ऐन्द्रजालिक दृश्य–जादू का नज़ारा।
नौ नौ बांस कूदने लगे–बहुत प्रसन्न होने लगे।
नियुक्त किया जाय–लगाया जाय।
१५० सोपान भूत–सीढ़ी।
नासिकाग्रभाग–नाक का अगला भाग।
बुद्बुद के समान–बुलबुले के समान।
हिमास्तरण–बर्फ़ का ढकना।
१५१ पारद–पारा।
अनशन–व्रत (भोजन न करना)।
व्योमयान–हवाई जहाज।
धूम्रशकटी–रेलगाड़ी।
१५२ अमुक–फ़लाँ (जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ कहा जा रहा हो, वह व्यक्ति)।
१५५ कृषक–किसान।
मद्यपान–शराब पीना।
१५६ वाष्पशकटियों का–रेलगाड़ियों का।
१५९ वादविवाद–बहस।
अनश्वर–न नष्ट होने वाला।
१६० अर्थशास्त्र–दौलत सम्बन्धी शास्त्र (Economics)।
शुभाशुभ परीक्षा के लिए होते हैं–अच्छी और बुरी बात को जाँचने के लिए होते हैं।
१६१ प्रोत्साहक–उत्साह देने वाला
१६२ कण्टक–काँटा।
किरीट–मुकुट।
अत्याचार–बुराई।
१६३ शनैः शनैः–धीरे २।
पारितोषिक–इनाम।

१६४ कल्याणप्रद—सुख देने वाली।

वातायन—खिड़की।

१६५ व्यपदिष्ट—वेष बनाकर (वैसा ही रूप बनाकर)।

१६६ कपोत—कबूतर।

ईप्सित—चाहा हुआ।

कन्दुक क्रीड़ा—गेंद का खेल।

१६८ सदस्यों को—मेम्बरों को।

मनोहर इलैक्ट्रिक प्रैस, गली नन्ने खाँ, दरियागंज, दिल्ली